वर्ष ३१] * * * [अङ्क १२

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,४५,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष २०२२, दिसम्बर १९६५

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ७५ पै०
विदेशमें ५६ पै०
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
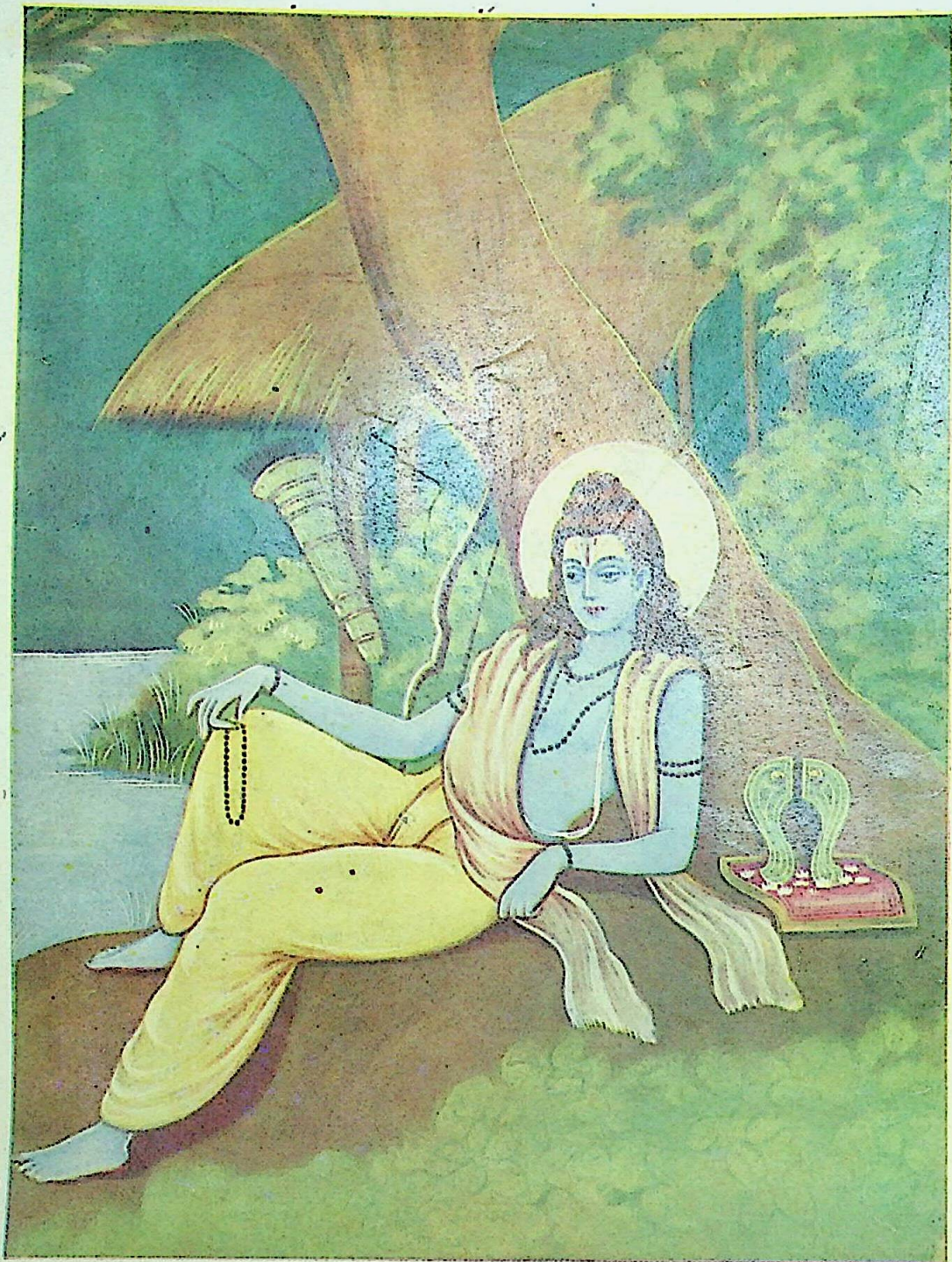
नन्दिग्राममें भरतजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
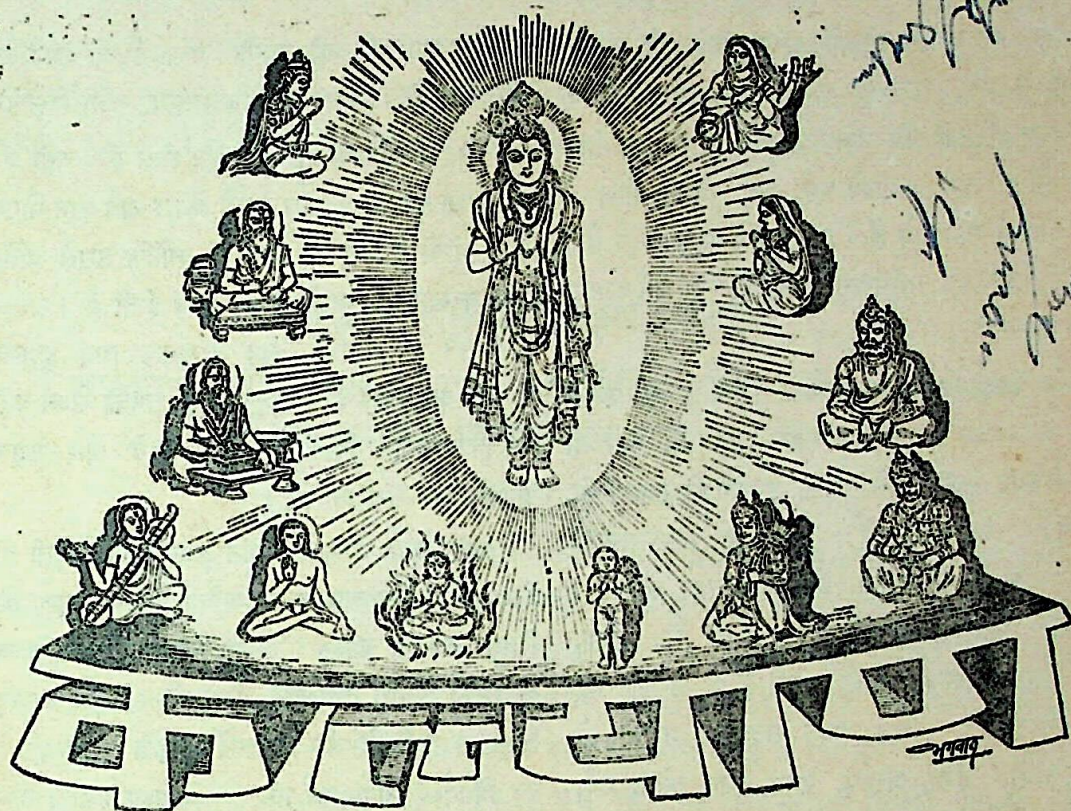
सदा सर्वत्रास्ते ननु विमलमाद्यं तव पदं तथाप्येकं स्तोकं नहि भवतरोः पत्रमभिनत् ।
क्षणं जिह्वाग्रस्तं तव तु भगवन्नाम निखिलं समूलं संसारं कषति कतरत् सेव्यमनयोः ॥

वर्ष ३९ } गोरखपुर, सौर पौष २०२२, दिसम्बर १९६५ { संख्या १२ पूर्ण संख्या ४६९

नन्दिग्राममें भरतजी

चरनपादुका नेह सों पूजत नित अभिराम ।
रामप्रेम मूरति भरत निवसत नंदीग्राम ॥
मन अखंड स्मृति रामकी- जीभ रामको नाम ।
राजत कर जप-माल सुचि तजे भोग सब काम ॥

याद रक्खो—इस लोकमें सुख-सुविधा रहे, जीवन कष्टमय न रहे, सदाचार तथा सद्व्यवहार जीवनके स्वभावगत हो जायँ और मानव-जीवनके परम लक्ष्य मोक्ष-की प्राप्ति हो जाय—इसलिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चार पुरुषार्थ माने गये हैं। इन चारोंमें मोक्ष लक्ष्य है। मोक्षके लिये ही धर्मसंगत, धर्मानुमोदित अर्थ-कामका सेवन करना है।

याद रक्खो—अर्थकी सार्थकता इसीमें है कि उसके द्वारा धर्म-साधन हो, अभावग्रस्तोंके अभावकी पूर्ति हो तथा लोककी सच्ची सेवामें उसका उपयोग हो। नहीं तो, अर्थ सर्वथा अनर्थरूप है। अर्थ यदि भोगवासनाकी तृप्तिमें लगता है तो वासना, अतृप्ति और पाप बढ़ते हैं। अर्थ यदि किसीके अहितमें लगता है तो वैर, हिंसा, दुःख तथा नरकोंकी प्राप्ति होती है। अर्थका यदि सावधानीके साथ उचित रूपमें सदुपयोग न हो तो उससे चोरी, हिंसा, असत्य, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, स्त्री, जुआ तथा शराब-का व्यसन—ये पंद्रह अनर्थ उत्पन्न होते हैं। प्रेम तथा स्नेह-सेवाके पात्र सम्बन्धियोंमें शत्रुता हो जाती है। अर्थके साथ भय तो लगा ही रहता है। चिन्ता तो अर्थकी नित्य संगिनी है—उपार्जनमें, रक्षणमें, बढ़ानेकी इच्छामें, व्यवहारमें तथा नाशमें—चिन्ता रहती है। चिन्ताके साथ ही त्रास, परिश्रम और भ्रम भी लगे रहते हैं। अतएव अर्थको अनर्थरूप समझकर उसके संग्रहकी इच्छा न करो, जीवन-निर्वाहके लिये सुख तथा धर्मपूर्वक उपार्जन करो और उसका सद्व्यय करो।

याद रक्खो—अर्थकी भाँति ही काम भी इन्द्रियतृप्ति-के लिये नहीं है। वह भी जीवन-निर्वाह तथा मानव-जीवनके लिये आवश्यक कर्तव्योंकी पूर्तिके लिये ही है। धर्मके द्वारा नियन्त्रित अर्थ ही जैसे उपयोगी होता है, वैसे ही काम भी वही उपयोगी होता है, जो धर्मके द्वारा नियन्त्रित हो, धर्मरूप हो और जिसका लक्ष्य मोक्ष हो।

याद रक्खो—धर्मका भी लक्ष्य मोक्ष है। यही धर्म-का सच्चा फल है। जिस धर्मसे केवल अर्थ-काम-भोगकी प्राप्ति होती है, वह तो व्यर्थ है; क्योंकि उससे अनित्य तथा दुःखमूलक पदार्थोंकी ही प्राप्ति होती है। वास्तव-में जितने भी भोग हैं, सब दुःखरूप तथा दुःखकी उत्पत्ति करानेवाले हैं। अतएव उसी धर्मका सेवन करो, जो विषयभोगोंमें वैराग्य उत्पन्न करा दे और मोक्षकी प्राप्तिमें परम सहायक हो।

याद रक्खो—जिससे अतृप्ति तथा तृष्णा बढ़ती हो, जिससे दिन-रात अशान्तिकी अग्निमें जलना पड़ता हो, जिससे नये-नये बन्धन होते हों, जिससे नये-नये दुःख-क्लेशोंकी उत्पत्ति तथा वृद्धि होती हो, जिससे भगवद्-विमुखता होती हो और पापकर्मोंमें प्रवृत्ति बढ़ती हो—वह त्रिवर्ग—(अर्थ, धर्म, काम) किस कामका।

याद रक्खो—मोक्ष-विरोधी जो कुछ भी है, सभी त्याज्य तथा हेय है। अतएव धर्मविरुद्ध तथा वासना बढ़ानेवाले अर्थ एवं काममें तो रुचि रखनी ही नहीं चाहिये। ऐसे धर्मके लिये भी बहुत प्रयत्नशील नहीं होना चाहिये, जिससे केवल सम्पत्ति, भोग, सुन्दर शरीर, लौकिकी विद्या, लोककीर्ति और लंबी आयु मिलती हो; क्योंकि मोक्षविरोधिनी होनेपर ये सभी वस्तुएँ दुःख तथा बन्धन करनेवाली होती हैं और अनित्य तथा अपूर्ण होनेसे सदा ही चिन्ता तथा भयसे ग्रस्त रखती हैं।

याद रक्खो—मानव-जीवन अर्थकामोपभोगके लिये है ही नहीं। जहाँ जीवनमें केवल अर्थ और कामोपभोगकी लिप्सा जग जाती है, वहाँ धर्म नहीं रहता। इससे जीवन अधर्ममय, पापमय बन जाता है और पापका फल दुःख, बन्धन तथा नरकयन्त्रणा है ही। किसी भी युक्ति, मत,

बहुमतसे या अस्वीकार करनेसे जीव इस फल-भोगसे कभी बच नहीं सकता । बाध्य होकर उसे अपने दुष्कर्मका फल भोगना ही पड़ता है । मानव-जीवनका साध्य तो भगवत्प्राप्ति या मोक्ष ही है और जो इस साध्यकी प्राप्तिमें सहायक साधन हो, वही धर्म है और जो इस धर्ममें सहायक साधनरूप है, वही पुरुषार्थमें गण्य अर्थ और काम है । इसी दृष्टि तथा इसी निश्चयसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इस चतुर्विध पुरुषार्थका सम्पादन-सेवन करो ।

'शिव'

हिंदू-संस्कृतिकी विलक्षण महिमा

[परमपूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित गोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके एक प्रवचनका सारांश]

[प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी]

[कुछ समय पूर्व गाजियाबादमें पूज्य श्रीस्वामी श्रीनारदानन्द सरस्वतीजी महाराजने एक विराट् महोत्सव कराया था । उसीमें पधारे थे भारतके सुप्रसिद्ध महान् धर्माचार्य परमपूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित गोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज । मुझे भी उसमें जानेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उसी शुभ अवसरपर पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्यजी महाराजने हिंदू सभ्यता-संस्कृतिकी अद्भुत महत्तापर प्रवचन दिया था । उसे मैंने लिख लिया था । वही नीचे दिया जा रहा है । आशा है, पाठक इसे ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे और इसमें जो भी भूल रह गयी हो, वह सब मेरी ही समझेंगे; पूज्यपाद श्रीश्रीआचार्यचरणकी नहीं ।]

१—श्रीभगवन्नामकी अद्भुत महिमा

सबको मिलकर श्रीभगवन्नाम बोलना चाहिये, श्रीभगवन्नाम-स्मरण करना चाहिये तथा श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन करना चाहिये । श्रीभगवन्नाम-स्मरण करनेमें, श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन करनेमें कभी भी संकोच नहीं करना चाहिये और कभी भी लज्जाका अनुभव नहीं करना चाहिये । हाँ, श्रीभगवन्नाम-स्मरण करनेमें, श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन करनेमें उन्हें तो अवश्य ही लज्जा करनी चाहिये, जो वास्तवमें रावणके खानदानके हों, जो कंसके वंशज हों । पर जो हमारे भगवान् श्रीराम-कृष्णके वंशज हों, जो भगवान् श्रीराम-कृष्णके खानदानके हों, जिनके शरीरमें ऋषि-महर्षियोंका रक्त हो, जो महाराणा प्रताप या छत्रपति शिवाजीके खानदानके हों और जो वीर छत्रसाल एवं श्रीगुरु गोविन्दसिंहके अनुयायी हों और इनके माननेवाले हों, उन्हें भगवान् श्रीराम-कृष्णके नाम लेनेमें कभी भी तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिये और खूब खुलकर बोलना चाहिये—

'श्रीराम जय राम जय जय राम'

श्रीभगवन्नामकी शास्त्रोंमें बड़ी अद्भुत विलक्षण महिमा बतायी गयी है ।

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥

श्रीभगवान्के नाममें जितने पापोंको नाश करनेकी शक्ति है, उतने पाप प्राणी कर ही नहीं सकता । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी बताया है—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ॥

इसलिये खूब श्रीभगवन्नाम लिया करो और बोला करो—

'श्रीराम जय राम जय जय राम'

जब हम पूज्य प्रातःस्मरणीय ऋषि-महर्षियोंकी संतान हैं और जब धर्मप्राण भारतमें हमारा जन्म हुआ है, तब भला हमें श्रीभगवन्नामामृतके पान करनेमें संकोच कैसा ? श्रीभगवन्नामामृतके पान करनेमें लज्जा कैसी ? इसलिये खूब श्रीभगवन्नाम लेना चाहिये । इसीमें हमारा सच्चा वास्तविक परम कल्याण है ।

२—हिंदू कहनेमें गर्वका अनुभव करो

अपनेको बड़े गर्व और बड़े गौरवके साथ हिंदू कहना चाहिये तथा हिंदू मानना चाहिये । यह घोर दुःखकी और बड़ी लज्जाकी बात है कि आजका हिंदू अपनेको हिंदू कहने और हिंदू माननेमें भी संकोच और बड़ी लज्जाका अनुभव करता है । आज बहुत-से लोग कहते हैं कि हम हिंदू नहीं हैं, हम तो आर्य हैं । हिंदू नाम प्राचीन नहीं है और चोर-डाकुओंके लक्ष्यसे मुसल्मानोंका रखा हुआ है आदि-आदि । ये सब बेसमझकी बातें हैं । हिंदू नाम बहुत प्राचीन है । वस्तुतः हिंदू उसे कहते हैं कि जो वर्णाश्रम-धर्मको मानता है, जो गौको, गीताको, शास्त्रोंको, वेदोंको और पुराणोंको मानता है । जो तीर्थोंमें श्रद्धा रखता है, जो राम-कृष्णको और देवी-देवताओंको मानता है । जो गौ-ब्राह्मणोंकी रक्षा करता है, जो दुष्टोंको दण्ड देता है और जो हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षा करता है । वे हिंदूकी रक्षा तो क्या करेंगे, जो स्वयं अपनेको भी हिंदू कहनेमें संकोच और लज्जाका अनुभव करते हैं । वस्तुतः अपनेको हिंदू कहनेमें हमें महान् गौरवका अनुभव होना चाहिये कि हम कैसे भाग्यशाली हैं कि हमें उस परम श्रेष्ठ और परम पवित्र हिंदू जातिमें जन्म लेनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि जिसमें भगवान् श्रीराम-कृष्णके अवतार हुए हैं, जिसमें बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि उत्पन्न होते हैं और जिसमें महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी-सरीखे धर्मवीर उत्पन्न हो चुके हैं ।

३—हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिकी विलक्षणताको जानो

समस्त विश्वमें हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिसे बढ़कर सर्वश्रेष्ठ सभ्यता-संस्कृति दूसरी कोई है ही नहीं । हिंदू-सभ्यता-संस्कृति ही सारे विश्वको यह सिखाती है कि हमें कैसे खाना चाहिये, कैसे पीना चाहिये, कैसे सोना चाहिये, कैसे उठना चाहिये, कैसे विवाह-शादी करनी चाहिये, कैसे संतान उत्पन्न करनी चाहिये और हमें कैसे मरना-जीना चाहिये । हमारी हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिकी प्रत्येक बात विशेषता रखती है और अद्भुत विलक्षणता लिये हुए होती है । जिन्हें आत्मतत्त्वसे लेकर जीने-मरने तथा खाने-पीने एवं सोने-उठने तककी सार बातें सीखनी हों, उन्हें हमारे इस देश—भारतमें आकर सनातनधर्मकी शरण ले हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिसे वे सीखनी चाहिये । भगवान् श्रीमनुने घोषणा की है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

केवल भारतभूमिकी ही यह विशेषता है कि इसमें बड़े-बड़े देवी-देवता भी जन्म लेनेके लिये लालायित रहा करते हैं । तभी तो कहा गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

समस्त विश्वमें यह कोई भी नहीं जानता कि भोजन कैसा हो तथा कैसे करना चाहिये । एकमात्र हिंदू-सभ्यता-संस्कृति ही यह बताती है कि भोजन शुद्ध कमाईका हो और भोजन शुद्ध गौके पवित्र गोबरसे लिपे शुद्ध पवित्र चौकेमें बैठकर शुद्ध होकर स्नानादि करके स्वच्छ शुद्ध वस्त्रोंको पहनकर बनाया गया हो । भोजनके बन

जानेपर सर्वप्रथम अग्निमें आहुति देनी चाहिये और भगवान्‌को भोग लगाना चाहिये । तदनन्तर ब्राह्मण अतिथिको, पूज्य माता-पिताको, बालकोंको प्रथम भोजन कराना चाहिये । इसके पश्चात् स्वयं चौकेमें बैठकर श्रीभगवत्प्रसादको ग्रहण करना चाहिये। भोजन करनेसे पूर्व पञ्चग्रास निकालने चाहिये और यह मन्त्र बोलना चाहिये—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

और—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'

फिर श्रीभगवत्प्रसाद पाना चाहिये। दूसरोंके यहाँ ये बातें हैं ही नहीं। उनके सामने तो थालीमें जहाँ 'खाना' आया और जैसा भी खाना आया, उन्होंने झटसे पशुओंकी भाँति खाना प्रारम्भ कर दिया। उन्हें इस बातका ज्ञान ही नहीं है कि भोजन कैसे तैयार किया जाता है, भगवान्‌को भोग कैसे लगाया जाता है, उसमें कैसे दिव्यता लायी जाती है और फिर कैसे पाया जाता है? यह तो एकमात्र हिंदू-संस्कृति ही बता सकती है।*

* आजकल तो भोजनमें बहुत ही भ्रष्टता आ गयी है। शुद्ध कमाईकी बात तो दूर रही, भोजन बनाया जाता है अशुद्ध स्थानोंमें और जिनके हाथका बना भोजन विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिसे भी मानस तथा शारीरिक व्याधियोंको उत्पन्न करता है, उनके हाथों बनाया जाता है। भोजनकी सामग्री भी अशुद्ध तथा तामस होती है और भोजन करनेमें भी शुद्धिका कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता। शारीरिक दृष्टिसे भी हरेकके थूकमें कीटाणु रहनेसे रोगोंका संक्रमण होता है, इससे जूँठन नहीं खानी चाहिये। पर आजकल शौकसे जूँठा भोजन खाया जाता है। समारोहोंमें 'बफ' नामक एक भोजन-पद्धति चली है, जिसमें हाथ धोकर, बैठकर खाना नहीं होता। जूता पहने लोग घूमते रहते हैं और बीचमें मेजपर रक्खी भोजन-सामग्रीमेंसे यथेच्छ लेकर खाते जाते हैं। जूँठनकी तो स्मृति ही नहीं रहती। यह एक प्रकारका पशु-आचार है, पर इसे सुधरे हुए लोगोंकी पद्धति माना जाता है। मांसका प्रचार भी दिनोंदिन बढ़ रहा है। सरकार भी मांसाहारके प्रचारमें संलग्न है। हम यह बात प्रायः भूल ही गये हैं कि भोजनके अनुसार ही मन बनता है और मनके अनुसार ही जीवन!—सम्पादक

४—सनातनधर्मियोंका मरना भी विलक्षण है

सनातनधर्मियोंका, हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिवालोंका मरना भी बड़ा विलक्षण है। हिंदू-संस्कृति हिंदूको मृत्युकी ऐसी विधि बताती है कि जिस विधिसे मरनेके लिये बड़े-बड़े देवता भी लालायित रहा करते हैं। सनातनधर्मी हिंदू अन्यान्य मतावलम्बियोंकी भाँति नहीं मरते। किसीको मरना सीखना हो तो सनातनधर्मी हिंदूसे सीखे कि कैसे मरते हैं और जिस मरनेपर हजारों जीवन न्यौछावर कर दिये जायँ तो थोड़े हैं। जब सनातनधर्मी अपने प्राणोंका परित्याग करता है तो वह गोदान करता है, उसके मुखमें श्रीगङ्गाजल और श्रीतुलसीदल होता है और कानोंमें गीताकी ध्वनि होती है। श्रीरामनामामृतका पान करता हुआ बड़े शानसे वह प्राणोंका परित्याग करता है। उसका मरना भी विलक्षण जो ठहरा। अन्तकालमें वह भगवान्‌का स्मरण करता हुआ मरना चाहता है, जिससे मानव-जीवन सफल हो। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें बताते हैं—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
(८।५)

'जो पुरुष अन्तकालमें मुझको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।'

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(८।६)

'मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है।' इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण आगे आज्ञा करते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(८।७)

'इसलिये तू सब समयमें मेरा स्मरण भी कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें मन-बुद्धि अर्पण करनेसे तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा।'

सनातनधर्मीका महत्त्वपूर्ण मरण होता है—

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा।
राम काजु छनभंगु सरीरा॥

हिंदू-संस्कृति ही यह बताती है कि हमें कैसे चलना चाहिये, कहाँ-कहाँपर जाना चाहिये और कहाँ-कहाँपर नहीं जाना चाहिये ? हिंदू-संस्कृति बताती है कि भगवान्ने कृपा कर पैर दिये हैं तो हमें अपने इन पैरोंसे चलकर तीर्थयात्रा करनी चाहिये, देव-मन्दिरोंमें जाना चाहिये और संत-महात्माओंके सत्सङ्गमें जाना चाहिये। भूलकर भी कुसङ्गमें, सिनेमाओंमें और दुष्टोंके पास नहीं जाना चाहिये। यदि हमने इन बातोंपर ध्यान नहीं दिया और देव-मन्दिरोंमें, तीर्थयात्रामें, सत्सङ्गमें न जाकर इन पैरोंके द्वारा कुसङ्गमें जाना जारी रक्खा तो अगले जन्ममें भगवान् हमसे ये अपने दिये हुए पैर छीन लेंगे। आपने देखा होगा कि सर्पके पैर नहीं होते, वे इसीलिये नहीं होते। भगवान्ने सर्पसे इसीलिये पैर छीन लिये कि उसने पूर्वजन्ममें अपने पैरोंका दुरुपयोग किया था।

हमें भगवान्ने नेत्र दिये हैं। वे इसीलिये दिये हैं कि हम अपने इन नेत्रोंसे देव-मन्दिरोंमें जाकर भगवान्के श्रीमङ्गलमय मुखारविन्दका दर्शन करें, तीर्थोंका दर्शन करें, संत-महात्माओंका दर्शन करें, अपने शास्त्रोंका अवलोकन करें, सत् वस्तुओंको तथा सद्व्यवहारोंको देखें। इन नेत्रोंसे भूलकर भी परस्त्रीको कुदृष्टिसे न देखें, सिनेमा आदि न देखें और कोई भी बुरी चीज न देखें। जो मनुष्य नेत्रोंसे भगवान्के मङ्गलमय श्रीविग्रहका दर्शन न कर परस्त्रीको कुदृष्टिसे देखते हैं और इन नेत्रोंका दुरुपयोग करते हैं तो भगवान् अगले जन्ममें उनसे ये नेत्र छीन लेते हैं और उन्हें अन्धा या काना बना देते हैं।

भगवान्ने हमें ये कान भगवान्के गुणानुवाद, नाम-लीला-कीर्तन सुननेके लिये, अच्छी बात सुननेके लिये दिये हैं। पर जो मनुष्य इन कानोंसे श्रीभगवद्-गुणानुवाद और श्रीभगवान्की कथाएँ नहीं सुनता और रेडियोके गंदे-गंदे गाने सुनता है, अगले जन्ममें भगवान् उससे कान छीन लेते हैं और उसे बहरा बना देते हैं।

भगवान्ने हमें यह जिह्वा दी है और इसीलिये दी है कि हम अपनी इस जिह्वासे खूब श्रीभगवन्नामामृतका पान करें, भगवान्के अमृतमय, मङ्गलमय नामोंका गायन करें, श्रीभगवद्गुणानुवादका गायन करें। यदि हम इस जिह्वासे श्रीभगवन्नामामृतका पान न करके इससे गंदे-गंदे गाने गाते हैं, किसीको गाली देते हैं, कटु शब्द बोलते हैं, शाप देते हैं, किसीके अहितकी बात कहते हैं और शास्त्र-विरुद्ध बात बोलते हैं तथा इसका दुरुपयोग करते हैं तो अगले जन्ममें भगवान् हमसे जिह्वा छीन लेते हैं और हमें गूँगा बना देते हैं।

हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये—यह हमें हिंदू-सभ्यता-संस्कृति ही बताती है। हिंदू-संस्कृति कहते हैं—शास्त्रानुसार उत्तम कर्म करनेको। अंग्रेजी कल्चर हिंदू-संस्कृति कदापि नहीं है। कल्चर और चीज है और हिंदू-संस्कृति और चीज। इनमें बड़ा अन्तर है। आजकल लोग कल्चरको ही संस्कृति कहने लगे हैं जो बिल्कुल गलत है। हिंदू-संस्कृति क्या है और मुस्लिम तथा ईसाई-संस्कृति क्या है—इसे हम मोटे रूपमें इस प्रकार कहा करते हैं।

हिंदू-संस्कृति क्या है ?

जिसे हिंदू-सभ्यता-संस्कृति देखना हो, उसे किसी धर्मशालामें जाकर देख लेना चाहिये। धर्मशालामें आपको हिंदू-संस्कृतिके एक स्थूल अंशके दर्शन हो जायँगे। वहाँपर—धर्मशालामें आपको एक रसोईघर मिलेगा, जिसमें

ब्राह्मण माथेपर तिलक लगाये, यज्ञोपवीत पहने, शुद्ध गौके गोबरसे लिपे चौकेमें बैठा बड़ी पवित्रतासे रसोई बनाता हुआ मिलेगा और बड़े विधि-विधान तथा पवित्रतासे शुद्ध सात्त्विक भोजन बनाकर भगवान्‌को भोग लगाकर भोजन कराता मिलेगा।

मुस्लिम-संस्कृति क्या है ?

इसके विपरीत आप यदि मुस्लिम-संस्कृतिका नमूना देखना चाहते हैं तो किसी मुसलमानकी सरायमें चले जाइये। वहाँपर आपको मुस्लिम-संस्कृतिकी झलक देखनेको मिल जायगी। सरायमें कूड़ेके ढेर लग रहे होंगे और चूल्हेके पास जूते पहिने गंदे कपड़ोंके साथ मुसलमानी रोटी बन रही होगी। पासमें मुर्गियाँ कुँकड़ू-कुँकड़ू करती डोल रही होंगी, मुर्गियोंकी बीटें और पंख इधर-उधर बिखरे पड़े होंगे और सब मुसलमान एक जगह बैठकर एक दूसरेका जूँठन खा-पी रहे होंगे एवं अंडे-मांस-मछलीकी तथा प्याज-लहसुनकी बदबूसे दिमाग सड़ा जाता होगा।

ईसाई-संस्कृति क्या है ?

ईसाई-संस्कृति देखना हो तो आप सीधे किसी अंग्रेजी होटलमें चले जाइये। होटलमें जानेपर आपको कोट-बूट, टोप, नेकटाई पहने अंग्रेजी पढ़े बाबू जूते पहिने मेज-कुरसियोंपर बैठे मिलेंगे और चीनीके बर्तनोंमें और काँचके गिलासोंमें चाय, बिस्कुट, केक, डबल रोटी, अंडे, मुर्गी-मांस-मछली आदि अनाप-शनाप चीजें काँटे-छुरीसे खाते मिलेंगे। पासमें कुत्ते बैठे होंगे और रेडियोके गंदे-गंदे गाने हो रहे होंगे तथा शराबके दौर-दौरे होंगे।

समस्त विश्वमें सर्वश्रेष्ठ संस्कृति यदि कोई है तो वह एकमात्र हमारी हिंदू-संस्कृति ही है। इसकी तुलनामें और कोई भी संस्कृति है ही नहीं। यदि अपना कल्याण करना हो और अपने देश-जातिका उद्धार करना हो तो सबको अपने सनातनधर्मकी शरणमें आना चाहिये और अपनी हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिको अपनाना चाहिये। इसीमें वास्तविक कल्याण है।

'बोलो सनातनधर्मकी जय !'

प्रभु-कृपासे ही उद्धार सम्भव

आपकी कृपाका लाभ जो यदि उठा लेता तो कनक बन जाता कदर्थ भव धूरेका।
साधनाकी आँचमें तपाके, नास चोट दे दे, बना देता तार कोई भक्तके तँबूरेका॥
आपके सुनामकी ध्वनि भावुक निकालते, जो मैं भी सुन पाता गीत भक्तोंके जूरेका।
आश्रयभूत प्रेमीके करकी मृदु चोटोंसे होता उद्धार इस भव पहाड़ धूरेका॥ १॥
गर्भके त्रासका आभास रंच रखता यदि, जाता क्यों विनाश ओर दास ये हुलाससे।
नश्वरको अविनश्वर मानता ब्रजेश्वर क्यों ! ग्रीवा क्यों फँसा देता विलासोंके पाशसे॥
मायाकी मरीचिकाको मुदित मनाता क्यों, होता क्यों हर्षित प्रभो ! क्षणिक सुखाभाससे।
जकड़ चुका हूँ जग, पकड़ चुका हूँ मग, छूटना है सम्भव तो आपके प्रयाससे॥ २॥

—मदनगोपाल चाँडक

ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कुछ अमृतोपदेश

भगवान्‌को हर समय याद रखना चाहिये ।

× × ×

…………मेरी लिखी हुई पुस्तकों और कल्याणको आप पढ़ते हैं सो अच्छी बात है; किंतु पढ़नेमें रस नहीं लेना चाहिये, उसके अनुसार जीवन बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये । जपका उद्देश्य भगवान्‌में मन लगाना है ।

संतों-महापुरुषोंका चरण-चिन्तन करना भगवच्चिन्तन नहीं है । संतों और महापुरुषोंका चिन्तन इसलिये करना चाहिये जिससे भगवान्‌में प्रेम बढ़े ! संतों-महापुरुषोंके जीवनका अनुकरण करना चाहिये ।…

× × ×

शास्त्रोंका अवलोकन और महापुरुषोंके वचनोंका श्रवण करके मैं इस निर्णयपर पहुँचा कि संसारमें श्रीमद्भगवद्गीताके समान कल्याणके लिये कोई भी उपयोगी ग्रन्थ नहीं है । गीतामें ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं, उनमेंसे कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रुचि और योग्यताके अनुसार करनेसे मनुष्यका शीघ्र कल्याण हो सकता है ।

अतएव उपर्युक्त साधनोंका तथा परमात्माका तत्त्व-रहस्य जाननेके लिये महापुरुषोंका और उनके अभावमें उच्च-कोटिके साधकोंका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक सङ्ग करनेकी विशेष चेष्टा रखते हुए गीताका अर्थ और भावसहित मनन करने तथा उसके अनुसार अपना जीवन बनानेके लिये प्राणपर्यन्त प्रयत्न करना चाहिये ।

× × ×

मनुष्यका मन प्रायः हर समय सांसारिक पदार्थोंका चिन्तन करके अपने समयको व्यर्थ नष्ट करता है । किंतु मनुष्य-जन्मका समय बड़ा ही अमूल्य है । इसलिये अपने समयका एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट न करके श्रद्धा और प्रेमपूर्वक भगवान्‌के नाम और रूपका निष्कामभावसे नित्य, निरन्तर स्मरण करना चाहिये । इस समय इससे बढ़कर आत्माके कल्याणके लिये दूसरा और कोई भी साधन नहीं है ।

दुखी, अनाथ, आतुर तथा अन्य सम्पूर्ण प्राणियोंको साक्षात् परमात्माका स्वरूप समझकर उनकी मन, तन, धन, जनद्वारा मन-इन्द्रियोंके संयमपूर्वक निष्कामभावसे तत्परता और उत्साहके साथ सेवा करनेसे भी मनुष्यका शीघ्र कल्याण हो सकता है ।

अतएव मनुष्यको हर समय भगवान्‌के नाम और रूपको याद रखते हुए ही निष्कामभावसे शास्त्रविहित कर्म तत्परताके साथ करनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

× × ×

…………ये सब बातें आपलोग वर्षोंसे सुनते आ रहे हैं; पर जिस प्रकारसे उन्नति होनी चाहिये, वैसी कम देखनेमें आती है । बहुत-से हमारे मित्र हुए, कई धनी थे, कई गरीब, पर बहुत-से चले गये । बड़े भी चले गये, बराबरके भी चले गये, छोटे भी चले गये, हम भी चले जायँगे । युक्तिसे भी समझते हैं, शास्त्र भी समझाते हैं, पर समझमें नहीं आ रहा है । महाभारतमें भी यक्षके प्रश्नपर युधिष्ठिरने यही बताया—

> अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम् ।
> शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

'दिन-प्रतिदिन प्राणी यमलोक जा रहे हैं—मर रहे हैं, फिर भी बचे हुए मनुष्य सदा जीना चाहते हैं—इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा ।' बहुतोंको समझाते हैं, हम मित्रोंसे कहते हैं कि 'सावधान हो' तो कोई कहता है कि 'ऋण चुक जाय तब ठीक रहे ।' कोई कहता है 'और सब ठीक है, लड़कोंका विवाह हो जाय तो ठीक रहे । फिर शान्तिसे भजन करें ।' कोई कहते हैं, 'और सब ठीक है, लड़के भी होशियार हैं; पर जरा इन्कम-टेक्सका मामला और सल्टा दें तो

ठीक रहे।' यह हमारे मित्रोंका हाल है। बहुत-से मर गये, बाकी मरेंगे ही, एक भी ऐसा नजर नहीं आता, जिसके लिये यह कहा जाय कि उसने मृत्युसे बचनेका इन्तजाम कर लिया है। इसीलिये सबसे कहते हैं—'समय थोड़ा रहा है, तत्परतासे साधन करो।' तो, हाँ, हाँ करते हैं। करेंगे, ऐसा बोलते हैं। बहुत-से ऐसे बोलते-बोलते चले भी गये। किसे कैसे समझायें? जीते समझते नहीं, मरनेपर समझानेका उपाय नहीं। इसी प्रकार धन-कुटुम्ब आदिकी चिन्तावाले चिन्ता करते-करते मर गये। न चिन्ता मिटी, न आत्मकल्याण ही हुआ। अब भी बहुतोंको कहते हैं। पर बात समझमें नहीं आती है। या तो हमारा दोष है अथवा सुननेवालोंका। भगवान्का तो है ही नहीं। उनकी तो बड़ी कृपा है। उनकी कृपाका तो प्रवाह बह रहा है। इतनी भारी कृपा है कि हम उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। स्वयं भगवान् कहते हैं—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥
(गीता ५।२९)

'मैं सारे प्राणियोंका सुहृद् हूँ, यह जानकर जीव शान्ति पा जाता है।'

× × ×

। वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।

संकलनकर्ता—शालिगराम

महाराष्ट्रमें भागवतका प्रभाव

(लेखक—श्रीभागवताचार्य श्रीमत्प्राणकिशोर गोस्वामी एम्० ए०, विद्याभूषण)

वेद और वेदानुगत शास्त्रमें आचार्य-वन्दनाकी धारा परम्परासे चली आ रही है। भागवत मुक्तकण्ठसे गुरु-महिमाका गान करता है। जगद्गुरु श्रीकृष्णने स्वमुखसे आचार्य-रूपमें अपनेको जाननेका विधान किया है। गुरु और श्रीकृष्ण शास्त्रोंमें अभिन्नरूपमें वर्णित होनेपर भी इन दोनोंके बीच एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषत्व यह स्वीकार किया गया है कि साक्षात् भगवत्स्वरूपसे भी अग्रपूजाके पात्र होते हैं उनकी ही कृपामूर्ति नरदेहमें भगवदाविर्भाव गुरुदेव। समष्टि गुरु-स्वरूपमें परम पुरुषोत्तम सभीके लिये समानरूपसे भगवद्-भिन्न विग्रहरूपमें परिपूजित होते हैं, तथापि संतोंकी वाणी और सदाचारकी समीक्षाके द्वारा व्यष्टि गुरुकी विशिष्टता अनायास ही उपलब्ध होती है। भगवदाराधनके प्रारम्भमें ही श्रीगुरुकी आज्ञा उन्हींकी वन्दना और आराधना होती है। उसका उल्लङ्घन करनेपर भगवान्के आराधन-क्रममें व्यतिक्रम होता है। साधुगणके द्वारा प्रदर्शित यह नीति सनातनी है। महाराष्ट्रके संतशिरोमणि एकनाथ अपनी भागवतव्याख्याके प्रारम्भमें गुरुवन्दना करते हुए कहते हैं—

संतोषं च गुरुं वन्दे परं संवित्‌दायकम्।
शान्तसिंहासनारूढमानन्दामृतभोगदम्॥

इस श्लोकका सरलार्थ यह है कि 'परम ज्ञान-प्रदाता संतोषमूर्ति गुरुदेवको प्रणाम करता हूँ। वे शान्तभावके सिंहासनपर आरूढ़ होकर आनन्दामृत-भोग प्रदान करते हैं।'

जिसको अभावका बोध है, वह संतोषका आश्रय नहीं ले सकता। लौकिक-पारलौकिक दोनों प्रकारके अभावके दूर होनेपर ही संतोष-सम्पद्का अधिकार प्राप्त होता है। गुरुदेव लौकिक लीलामें ही जीवके समीप आते हैं। उनके लौकिक अभावका होना असम्भव नहीं है। छत्रपति शिवाजीने सम्भवतः सोचा होगा कि वनवासी रामदासको अर्थकी अनुकूलता प्रदानकर उनका संतोष-सम्पादन करना सम्भव होगा। इस उद्देश्यसे वे उनके पास प्रचुर अर्थ प्रेषित करके उनकी शिष्यता स्वीकार करनेके अभिलाषी हुए थे। परंतु संतोषमूर्ति समर्थ स्वामी रामदासने छत्रपतिके द्वारा भेजी हुई अर्थ-सम्पत्तिको अस्वीकार करके लौटा दिया, तब शिवाजीकी निर्मल दृष्टिमें गुरुमूर्ति वास्तविक रूपमें प्रस्फुटित हो उठी। शिवाजीने समर्थ स्वामी रामदासके चरणोंमें आत्म-निवेदन किया। परातन-चेतनामें सम्बुद्ध भगवत्कृपा-रसघन-विग्रह श्रीगुरुदेव उच्छलित-अलौकिक-साधन-संवेदनरूपी सुर-सरिके भगीरथ हैं। अगणित प्राण उस सतत प्रवाहित अमृत-स्रोतमें, नित्य नयी भाव-सरसतामें, अनन्त जीवन-सङ्गीतमें मूर्च्छनाका आविष्कार करके धन्य हो रहे हैं। पर-

तत्त्व-साक्षात्कारमें ही परम संतोष प्राप्त होता है। एक मृत्तिकाके पिण्डके परिचयमें जैसे सब मृण्मयी वस्तुओंका परिचय हो जाता है, उसी प्रकार जिस एकके दर्शनसे सब दर्शन पूर्ण हो जाते हैं, उसीका आविर्भाव जिसकी जीवन-साधनामें हुआ है, उसमें फिर असंतोष रहनेका हेतु ही कहाँ रह जाता है ! उसका जीवन् पूर्णताकी अभिव्यञ्जना, अखण्ड सुखका निदर्शन तथा अटूट संतोषका परमादर्श है। वही मर्त्य-मूर्त्तिमें भी अमृत संतोष-स्वरूप श्रीगुरु हैं। उनका दान परम ज्ञान, गुह्यातिगुह्य ज्ञान है। वह ज्ञान अत्यन्त समीप गये बिना, प्रेम किये बिना, एकान्ततः अपना बने बिना पाया नहीं जाता, दिया नहीं जाता और देनेपर भी ग्रहण किया नहीं जाता। संशय, संदेह, सङ्कोच, प्रमाद, आलस्य, अविश्वास, जडता और अनाग्रहमें दिया हुआ ज्ञान अङ्कुरित नहीं होता, हो भी नहीं सकता। प्रेम, प्रीति, विश्वास, श्रद्धा, अनुकूल भावना, जिज्ञासा, अनुसंधित्सा, विनय, सेवा अस्फुटको प्रस्फुटित करते हैं, अप्रत्याशितको भी परमास्वाद्य बनाते हैं। सनक-सनन्दनादि शान्त भक्त हैं, उनका भाव शान्तभाव है। जिस भावमें क्षुब्ध होनेकी बात ही नहीं रहती, पूर्णानन्द प्राप्त होनेपर सारी अशान्त इन्द्रियवृत्तियाँ एकतान होकर उसी परम तत्त्वमें लीन हो जाती हैं। श्रीगुरुमूर्ति वही शान्त भावादर्श है। क्षुब्ध होनेका कारण होनेपर भी उसमें क्षोभ नहीं होता; क्योंकि उन्होंने समझ लिया है कि मात्रास्पर्श सुख-दुःख आते-जाते हैं और इन तरङ्गोंसे उत्तीर्ण हुए बिना परानन्दके धरातलपर पहुँचना सम्भव नहीं है। शान्तभावके सिंहासनपर आरूढ़, परमानन्दका भोग प्रदान करनेमें निरत उन गुरुदेवको नमस्कार।

'शान्तमिंहासनारूढ़' पदसे श्रीकृष्णकर्णामृतके परात्मनिष्ठा-सम्पन्न बिल्वमङ्गल ठाकुरका एक श्लोक याद आ गया—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वानन्दसिंहासनलब्धदीक्षाः ।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

इस श्लोकमें ठाकुर बिल्वमङ्गलने स्वानन्द-सिंहासनारूढ़ गुरुदेवके समीपमें अद्वैत निराकार तत्त्वदर्शनमें दीक्षा ग्रहणकी बात कही है और वहाँसे वे परम आकर्षण अनुभव करते हैं गोपीजनवल्लभका। वे कहते हैं कि गोपवधूके प्रिय शठ नायकने बलपूर्वक हमको अपनी दासी बना लिया है। भागवतमें वर्णित परम पुरुषोत्तमकी आराधनामें परम अमृतास्वाद है। भागवत गुरुदेव वही परम आनन्द प्रदान करते हैं।

महाराष्ट्रमें विठोबा—पाण्डुरङ्गको मध्यमणि करके वारकरी गोष्ठीने ख्याति प्राप्त की है। पण्ढरपुरमें प्रतिवर्ष जो विराट् मेला लगता है, वैसा मेला महाराष्ट्रमें और कहीं नहीं लगता। इस अवसरपर वहाँ जितने वारकरी भक्त वैष्णव हैं वे तो सम्मिलित होते ही हैं, उनके अतिरिक्त अन्य प्रदेशोंसे भी लाखों आदमी विठ्ठलके दर्शनार्थ आते हैं। महाराष्ट्रमें विभिन्न धार्मिक गोष्ठीके होते हुए भी विठोबा-भक्त वारकरी-सम्प्रदाय प्रचुररूपमें प्रचरित है। संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, जनार्दन स्वामी, एकनाथ आदि इसी गोष्ठीके स्मरणीय गुरुजन हैं।

संत कृपा झाली। इमारत फळा आली॥
ज्ञान देवे रचिला पाया। रचियेले देवालया॥
नामा तयाचा किंकर। तेण केला हा विस्तार॥
जनार्दन एकनाथ। ध्वज उभारिला भागवत॥
भजन करा सावकाश। तुका झाला से कळस॥

साधु-संतकी कृपासे इमारत बन गयी। ज्ञानदेवने प्रारम्भमें स्तम्भ-रचना करके देवालय निर्माण किया। नामदेव उनके ही दास थे। उन्होंने उस देवालयको विस्तृत कर दिया। जनार्दन स्वामीके सेवक एकनाथने उस देवालयके ऊपर भागवतका झंडा उड़ाया। अवसरके अनुसार भजन करके तुकारामने उसके ऊपर स्वर्णकलश स्थापन किया। ज्ञानदेवसे प्रारम्भ करके उपर्युक्त साधुगणने महाराष्ट्रमें वैष्णव भावका विराट् प्लावन उपस्थित कर दिया। इसके फल-स्वरूप औरकी तो बात ही क्या है, अन्त्यजपर्यन्त सब लोगोंने भक्ति-मुक्तिमें समान अधिकार प्राप्तकर नवसमाज-संगठनकी प्रेरणा प्राप्त की।

संत तुकारामके शब्दोंमें—

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चाण्डाळा ही अधिकार
बाळे भोळे नारीनर। आदि करुनि वेश्या ही
थोरे थोरे रहा न थोर। याति भक्ते नारीनर
करावा विचार न लगे चिन्ता करणासी॥

जातिका विचार भक्ति-पथमें अन्तर्हित हो जाता है। ज्ञानेश्वरीमें जो मतवाद प्रचारित है, वह अद्वैत भावनाके साथ भक्तिका सम्मिश्रण है। एकनाथने ज्ञानेश्वरकी वाणीके भीतर भक्तिवाद, भागवतधर्म और श्रीविग्रहकी आराधनाकी उपयोगिताका आविष्कार किया है। भागवत-धर्मके प्रचारमें एकनाथका योगदान प्रशंसनीय है। चतुःश्लोकी भागवत और एकादश स्कन्धकी व्याख्यामें उनके भाव, भक्ति और

काव्यशक्तिकी छाप चिरस्थायी हो गयी है। एकनाथी भागवत मानो ज्ञानेश्वरीका एक अभिनव भाष्य है। वारकरी-सम्प्रदायमें ज्ञानेश्वरीके बाद एकनाथी भागवतका ही समादर होता है। ग्रन्थके प्रतिपाद्य विषयका गौरव, वर्णनकी शैली केवल रसिक-भक्तसम्प्रदायको ही नहीं, बल्कि काशीक्षेत्रके सुपवित्र साधु-समाजके लिये भी परम विस्मयकी वस्तु है।

सुना जाता है कि एकादश स्कन्धके केवल दो अध्यायों-की व्याख्या होनेपर काशीमें गङ्गाके किनारे कोई ब्राह्मण उसका पाठ करने लगा; महाराष्ट्रकी प्राकृत भाषामें भागवत-की यह व्याख्या सुनकर काशीवासी पण्डिताभिमानी एक संन्यासी उसमें दोष दिखाकर उसे अशास्त्रीय प्रमाणित करने लगे। उन्होंने अपने एक शिष्यको पैठण एकनाथको काशी ले आनेके लिये भेजा, जिससे साक्षात् रूपमें उनकी व्याख्याका खण्डन किया जाय। उधर काशीसे उनको ले जानेके लिये एक आदमी आया है, यह सुनकर साधु एकनाथ अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने सोचा कि संन्यासीके रूपमें विश्वनाथजीने ही उनको जानेका आदेश दिया है। श्रद्धालु एकनाथ काशीमें आ गये। उपर्युक्त संन्यासीने उनको अपने मठमें स्थान दिया और तर्कद्वारा वे उनकी व्याख्याका खण्डन करने लगे। परंतु आश्चर्यकी बात है कि सन्यासी जितना ही तर्क करने लगे, उतना ही उन्हें अपने सामने एकनाथके स्थानपर श्रीकृष्ण बैठे दीखने लगे। इस दिव्य दर्शनसे उनका अभिमान तो दूर हो ही गया, साथ ही एकनाथके सामने शरणापन्न होकर सेवक-रूपमें वे उनकी सेवा करने लगे। इस प्रकार काशीमें रहकर एकनाथने भागवतकी व्याख्या समाप्त की।

एकनाथने उदात्त स्वरमें घोषणा की कि, 'भाषामें कोई गौरव नहीं है, श्रीहरि-नाममें ही गौरव है। श्रीराम-नाम, श्रीकृष्ण-नामका वर्णन चाहे जिस किसी भी भाषामें हो, उसके फलमें कोई तारतम्य नहीं होता।' केवल संस्कृत भाषामें बोलनेपर ही भगवान् उसे ग्रहण करेंगे और प्राकृत भाषामें बोलनेपर भगवान्के सामने वह आदृत न होगा, यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। जो संस्कृत भाषाके स्रष्टा हैं, वे ही प्राकृत भाषाके भी स्रष्टा हैं।

संस्कृत वाणी देवें केली
तरी प्राकृत काय चोरा पासोनि झाली ?

'संस्कृत देवताकी सृष्टि है, तो क्या प्राकृत चोरकी सृष्टि हो सकती है?' संस्कृत या प्राकृत, चाहे किसी भी भाषामें क्यों न हो, हरिकथासे निबन्धित सभी भाषाओंको पवित्र मानना पड़ेगा।

भक्तप्रवरने जिस-जिस कुलमें जन्म लिया था, उसका उल्लेख करके उसकी वन्दना करते हैं। मेरे पितामहके पिता अर्थात् प्रपितामह भानुदास थे परम भक्त। भगवान्के सम्मुख भक्तके सम्बन्धसे यह वंश अतिशय प्रिय था। बाल्यावस्थासे ही सूर्यके उपासक, परम पवित्रकीर्ति भानुदास अभिमानशून्य थे। वे महात्मा चिद्भानुके दर्शनसे कृतार्थ हुए। श्रीभगवान्ने कृपापूर्वक उनको साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया। भानुदासके पुत्र चक्रपाणि और उनके पुत्र सूर्यनारायण हुए। सूर्यनारायण आचारवान् वैष्णव ब्राह्मण थे, उनकी पत्नीका नाम रुक्मिणी देवी था। एकनाथ उनके एकलौते पुत्र थे। वे बाल्यकालमें ही माता-पिताका वियोग होनेके कारण संसारमें अकेले हो गये। पूर्वपुरुषोंकी परम्पराकी वन्दना करके वे कहते हैं—

वन्दुं भानुदास आतां यो का पितामहाचा पिता।
ज्याचेनि वंश भगवन्ता झाला सर्वथा प्रियकर॥

वैष्णवकुलमें जन्म लेकर एकनाथ अपनेको अत्यन्त भाग्यवान् समझते थे। उन्होंने सहस्रमुखसे वैष्णव-वन्दना की है।

वे कहते हैं—

ते वैष्णवकुळीं कुळनायक नारद, प्रह्लाद, सनकादिक।
उद्धव, अक्रूर, श्रीशुक, वसिष्ठादिक निजभक्त॥

'वैष्णवकुलनायक कहकर उन्होंने जिन-जिनका नाम लिया है, वे नित्य नमस्कार करने योग्य हैं। देवर्षि नारद, प्रह्लाद, सनकादि, उद्धव, अक्रूर, श्रीशुक, वसिष्ठ आदि भगवान्के निज भक्त हैं।'

वे कहते हैं कि भगवान्के हृदयकी बात भागवत है। यह विद्या-बुद्धिके अभिमानसे समझमें नहीं आती। जिनका चित्त सर्वदा भगवान्में लगा रहता है, केवल वे ही भागवतके रहस्यको जान सकते हैं, इस तत्त्वको वे ही प्राप्त करते हैं।

तो म्हणे श्रीभागवत तें भगवन्ताचें हृद्गत।
त्यासीच होय प्राप्त ज्याचें निरन्तर चित्त भगवन्तीं॥

श्रीकृष्णावतार लोकोत्तर चमत्कारपूर्ण है। वे चोर होकर भी परम ब्रह्म हैं, यह क्या परम आश्चर्यकी बात नहीं है। वे परम देवता हैं और लौकिक आचार करते हैं, क्या इसकी कोई कल्पना कर सकता है?

स्त्री-पुत्रको साथ लेकर भी श्रीकृष्ण ब्रह्मचारी हैं। अधर्ममें धर्मबुद्धि, अकर्ममें कर्मसिद्धि, अनियममें नियम स्थापित किया उन्होंने। वे सर्व दोषोंके परे हैं। एकनाथकी भाषामें—

अधर्मे वाढ़विला धर्म, अकर्मे तारिलें कर्म।
अनेमें नेमिला नेम, अति निःसीम निर्दुष्ट॥

भागवतकी शिक्षा है भगवत्सङ्गमें अन्य सङ्गका त्याग। उन्हींके भोगमें भोग और त्यागके बिना ही विषयान्तरका त्याग। इस नव धर्मके भागवतधर्मके वाहक हुए थे एकनाथ।

शुकदेवजी राजा परीक्षित्‌के प्रति अपने परम गुरु देवर्षिकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि—मुक्त जीवोंमें अग्रगण्य, ब्रह्मचारियोंमें शिरोमणि, योगिवृन्दके वन्दनीय शिरोरत्न, भक्तोंमें परम श्रेष्ठ भागवत, ब्रह्मानन्दके समुद्र, आत्मज्ञानके पूर्णचन्द्र, व्यासजीके गुरुदेव और मेरे परम गुरु महामुनीश्वर श्रीनारदजी हैं।

तो म्हणे व्यासाचाही निजगुरु
आणि माझाही परम गुरु
श्रीनारद महामुनीश्वर।

महामुनीश्वरके रूपाङ्कनमें एकनाथकी निष्ठाने एकान्त अभिनव आकार धारण किया है। देवर्षिके जीवनादर्शकी प्रतिकृति प्रत्येक शब्दकी व्यञ्जनामें अनुप्राणित है सामाजिकके भाव परिमण्डलमें। चारित्रिक गुणावलीके संकलनमें भावगरिष्ठ हृदयावेग उच्छलित प्रवाहमें पतित मनको अनास्वादितपूर्व वैकुण्ठ लोकके महामाधुर्य-रसका संधान प्रदान करता है, यह कहें तो इसमें अत्युक्ति न होगी।

सद्गुरु-परम्परासे भागवतकी प्राप्ति होती है। एकनाथ इस सत्यको विकृत नहीं करते हैं। श्रद्धा-भक्तिके बिना भागवत समझमें नहीं आता, इसका उन्हें विश्वास था। इसी कारण कहते हैं—

भक्त्या भागवतं भावमभावं काव्यपाठतः।
पठनात्पदव्युत्पत्तिर्ज्ञानप्राप्तिश्च भक्तितः॥

भागवतका भाव ग्रहण करना हो तो भक्तिभावमें ही उसकी प्राप्ति होती है। केवल काव्यसमालोचनासे भागवतका भाव पकड़में नहीं आता। एक-एक पदके विश्लेषण अथवा व्याकरण-सम्मत विचार करनेपर भी भागवत-रसका स्पर्श नहीं प्राप्त होता। सब प्रकारकी विचार-बुद्धि भक्तिप्रवाहमें बह जाती है, यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती। भक्ति होने-पर ही बन्धुवर्गके बीच भोगसम्बन्धी आकर्षण क्षीण हो जाता है। दूसरी ओरका आकर्षण जितना ही कम होगा, भागवतमें प्रवेश भी उसी परिमाणमें सरल हो जायगा। मनको भगवान्‌के पादपद्ममें रत रखनेपर भागवतकी ओर दृष्टिपात करते ही अर्थ स्पष्ट हो जायगा। जबतक अपनी विद्या-बुद्धिके ऊपर निर्भर रहकर भागवतकी व्याख्याका दायित्व वहन किया जायगा, तबतक वह बड़ा ही कठिन जान पड़ेगा, एवं पूर्वापर संगति रखकर भागवतका पद-विश्लेषण करना एक दुरूह व्यापार होगा। जीवनमें यदि किसी प्रकार महान् पुरुषकी कृपाका स्पर्श हो जाता है तो उसके साथ-साथ पटपरिवर्तन हो जाता है, तब भागवतके मर्मार्थमें इस प्रकार मन लग जाता है कि अन्य व्यक्तिके लिये वैसा चिन्तन करना एकबारगी अगम्य है।

साधु एकनाथने ऐसे ही एक शुभ संस्पर्शमें आकर भागवतरसिकके जीवनका सङ्ग प्राप्त किया था। इसी कारण उन्होंने मुक्त कण्ठसे घोषणा की थी कि भक्तिमें ही भागवतकी प्राप्ति होती है, पद-व्युत्पत्तिसे नहीं। हमलोगोंने प्राचीन विद्वानोंके द्वारा भागवतकी व्याख्याओंकी व्याख्या सुनी है। वे कहते हैं कि व्याख्याके पाँच लक्षण हैं, उन्हें जाने बिना किसी कथाकी व्याख्या नहीं की जा सकती—

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
प्रकरणस्य सङ्गतिर्व्याख्यानं पञ्चलक्षणम्॥

भागवतके व्याख्याताओंने इस नीतिका अवलम्बन किया है, इसी कारण परम्पराक्रमसे भागवतके पठन-पाठनका रसास्वादन सम्भव हुआ है। इस पथके आदर्श पुरुष श्रीधर स्वामीपाद हैं, उनकी अद्भुत जन्मकथा, साधना और सिद्धिकी प्राप्ति भागवतसमाजके लिये परम सम्पद् है। श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु श्रीधर स्वामीपादका अनुगमन करके ही किसी भागवतकी व्याख्याको साधुसम्मत बतलाते हैं।

एकनाथने भागवतकी व्याख्याके प्रसंगमें जिनकी वन्दना की है, उसमें विशेषरूपसे उन्होंने श्रीधरस्वामीका उल्लेख किया है।

आतां वंदूं श्रीधर। भागवत व्याख्याता सधर।
जयाची टीका पाहतां अपार अर्थ साचार पै लाभे॥

व्याख्याताओंमें प्रधान श्रीधर स्वामीकी वन्दना करके वे कहते हैं कि श्रीधरकी टीका देखनेपर भागवतके समग्र

अर्थका संधान लग जाता है। वाणीकी सार्थकता कवित्वशक्तिके प्रकाशमें होती है। काव्यकी सार्थकता रस-रचना और रसकी परा अवधि परतत्त्वके विनिर्णयमें होती है। एकनाथके भागवतमें इसकी सार्थकता मूर्तिमान् हो रही है। ओवी छन्दकी रचनामें उनकी वाणीने ज्ञानेश्वरका सार्थक अनुसरण किया है। ओवी छन्दकी रचनामें काव्यशक्तिका असीम विकास परिलक्षित होता है। उनकी कविता प्राकृत वर्णन न करके जीवनकी उस रस-चेतनाको उद्बुद्ध करती है, जिस रस-चेतनाने परमेश्वर-प्रीतिमें—परतत्त्वकी आराधनामें सार्थकता प्राप्त की है।

मराठी साहित्यमें एकनाथका यह दान असाधारण है। उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। उनके अधिकांश ग्रन्थ तत्कालीन प्रचलित ओवी छन्दमें विरचित होनेपर भी प्रतिपादनीय वस्तुकी विभिन्नताके कारण साहित्य-रसिकोंके लिये विशेष चमत्कारके उपादान हैं। भावार्थ-रामायण चालीस हजार ओवीमें है। भागवत बीस हजार ओवीमें है। इसके अतिरिक्त आनन्दलहरी, चिरञ्जीवपद, शुकाष्टक, स्वात्मसुख, हस्तामलक, चतुःश्लोकी भागवत, रुक्मिणीस्वयंवर आदि विभिन्न ग्रन्थोंमें प्रायः पाँच हजार ओवी छन्दकी रचना समाजकी दृष्टिको आकर्षित करती है। इस विराट् साहित्यने महाराष्ट्रके जीवन-छन्दमें ज्ञान और भक्तिका गठबन्धन कर दिया है।

वे गिरे, गिरकर उठे, उठकर चले !

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

जब भगवान् बुद्ध हताश हुए

निराशा किसके पास नहीं आती ? मनुष्य और देवता सभी इस दुर्गुणसे परेशान हुए हैं; किंतु उन्होंने अपने आत्मबलसे इसे पछाड़ा है और निरन्तर आगे बढ़े हैं।

भगवान् गौतम बुद्ध जीवनके रहस्योंको मालूम करनेके लिये बहुत दिनोंतक तपस्या और कठोर साधनामें लगे रहे। उन्होंने शरीरको भी पर्याप्त कष्ट दिया, खूब चिन्तन किया, पर आत्म-ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हुई।

उन्हें कठिनाइयों और परेशानियोंने विक्षुब्ध कर दिया। क्या करें ? वे साधना करते-करते जैसे थक गये थे। पर्वत-जैसे ऊँचे आकारवाली परेशानियोंसे त्रस्त होकर वे हताश हो गये। या यों कहिये कि वे कर्तव्य छोड़कर धड़ामसे गिरे ....

'अब मैं और अधिक कठिनाइयाँ सहन नहीं कर सकूँगा। मैं मानवताके सुख और समृद्धिके अपने उच्च लक्ष्यको छोड़ता हूँ।'—ये कायरताके शब्द उनके मनमें लगातार घूम रहे थे।

उन्होंने अपनी तपस्या मध्यमें ही छोड़कर घर लौटनेका निश्चय कर लिया।

वे मन-ही-मन कह रहे थे, 'मैं व्यर्थ ही इतनी परेशानियोंमें पड़ा रहा। मैंने जीवनके रहस्योंको मालूम करनेमें बहुत-सा समय नष्ट कर दिया, पर हाय, कुछ हाथ नहीं आया। इतना समय, परेशानी, शारीरिक और मानसिक कष्ट सब व्यर्थ हो गया। अब सब मुसीबतें छोड़ता हूँ।'

निराशा, अविश्वास और पराजयकी कायर भावनाओंने उन्हें विक्षुब्ध कर दिया। वे लौट पड़े वापस घरके लिये।

लड़खड़ाते कदमोंसे वे वापस आ रहे थे। मार्गमें उन्हें प्यास लगी। जल पीनेके लिये वे एक झीलके किनारे गये। जल पिया, विश्राम किया, मन कुछ ठंडा हुआ। सामने एक अजीब दृश्य देखा—

एक नन्ही-सी गिलहरी झीलके जलमें अपनी पूँछ भिगो-भिगोकर पानी बाहर छिड़क रही है। एक बार, दो बार, दस बार, बीस बार, सैकड़ों बार—यही काम कर रही है। वह जलमें पूँछ भिगोती है, सूखी धरतीपर जाती है और पानी बाहर झाड़ आती है। उन्हें उससे बातें करनेकी बड़ी उत्सुकता हुई।

'प्यारी गिलहरी ! तुम यह क्या कर रही हो ?'

वह दृढ़ताभरे स्वरमें बोली—'इस झीलके पानीने मेरे बच्चोंको बहाकर मार डाला है। उससे बदला ले रही हूँ। झीलको इस प्रकार सुखाकर ही छोड़ूँगी।'

उसने फिर अपना काम पूर्ववत् शुरू कर दिया।

बुद्ध बोले, 'झीलको सुखा रही हो ? बिना किसी बरतन-पानी बाहर फेंक रही हो। तुम्हारी छोटी-सी पूँछमें

भला कितनी बूँदें सूख पाती होंगी। तुम्हारे इतने छोटे शरीर, थोड़े-से बल और सीमित साधनोंसे भला कैसे यह विशाल झील सूख सकेगी ? इसमें न जाने कितने युगका समय लग जायगा, तुम्हारी आयु ही कितनी है ? इतना बड़ा काम और इतने सीमित साधन ! यह सब व्यर्थ होगा। व्यर्थ क्यों अपनी शक्तिका अपव्यय कर रही हो ? तुम इस झीलको कभी खाली न कर सकोगी।'

गिलहरीने निर्भयता और दृढ़तासे भगवान् बुद्धकी ओर देखा; फिर वह दृढ़ शब्दोंमें बोली—

'यह झील कब खाली होगी, या नहीं होगी—यह मैं नहीं जानती, न इसकी कोई परवा ही करती हूँ। मैं दृढ़तापूर्वक अपने काममें निरन्तर लगी रहूँगी। श्रम करना, लगातार अपनी लक्ष्यपूर्तिमें लगे रहना, कठिनाइयोंका सामना करना और अन्तमें विजय प्राप्त करना मेरी योजना है।'

भगवान् बुद्धके मनमें फिर उथल-पुथल हुई।

वे सोचने लगे, 'जब यह नन्ही-सी गिलहरी अपने थोड़े-से साधनोंसे इतना बड़ा कार्य करनेके स्वप्न देखती है, तब भला मैं उच्च मस्तिष्क और सुदृढ़ शरीरवाला विकसित मनुष्य अपने लक्ष्यकी पूर्ति क्यों न कर सकूँगा।'

वे फिर वापस अपनी साधनाके लिये लौट गये। उन्होंने फिर जंगलोंका कठिन जीवन बिताने और घोरतम तपस्या करनेका निश्चय किया।

एक दिन वे अपने लक्ष्यमें सफल होकर ही रहे!

कठिनाइयोंसे लड़ने और उनपर विजय प्राप्त करनेसे मनुष्यमें जिस आत्मबलका विकास होता है, वह एक अमूल्य सम्पत्ति होती है और उसको प्राप्तकर मनुष्यको अपार संतोष होता है।

न्यूटनने दुबारा प्रयत्न किया

सर आइजक न्यूटन संसारके प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। उन्होंने प्रकाश और गुरुतत्त्वाकर्षण, ग्रह और नक्षत्रों आदिके सम्बन्धमें अद्भुत खोजें की थीं। दिन-रात वे परिश्रम करते रहते थे।

अपने वैज्ञानिक अनुसंधानोंके लिये उन्होंने सरकारकी ओरसे महान् यश प्राप्त किया। उन्हें पार्ल्यामेन्टका सदस्य बनाया गया और 'सर' की उपाधिसे विभूषित किया गया।

वे सांसारिक यश और सम्मानोंकी चिन्ता न कर अपने लक्ष्यकी साधनामें लगे रहते थे। उन्होंने अनुभव किया कि उन्हें अभी बहुत करना शेष है।

एक बारकी बात है। तब उनकी आयु पचास वर्षोंकी थी। वे बीस वर्षसे अधिक प्रकाशका सिद्धान्त मालूम करनेके लिये श्रम कर चुके थे। कठोर अध्ययन और निरन्तर लेखन-कार्य चल रहा था।

एक बार रात्रिके समयसे लिखते-लिखते थक गये। मेजपर उनके अनुसंधानकी पुस्तक, आवश्यक कागज-पत्र बिखरे पड़े थे। लैम्प मेजपर जल रहा था। उनका छोटा कुत्ता डायमंड कमरेकी अंगीठीके सामने सो रहा था। मेजपर उन कागजोंके ढेरको छोड़कर, जिन्हें उन्होंने बीस वर्षोंमें तैयार किया था, वे कुछ देरके लिये घूमने बाहर चले गये।

न जाने क्या हुआ जब उनका स्वामी बाहर था, छोटा कुत्ता कूदकर मेजपर चढ़ गया। लैम्प उलट गया और तुरंत ही कागजोंमें आग लग गयी।

जैसे ही विनाश पूर्ण हुआ न्यूटन बाहरसे आये। कमरेमें प्रवेश करते ही दंग रह गये।

'हाय ! यह क्या !' बीस वर्षका उनका परिश्रम राखके ढेरमें बदल गया था।

जिन पुस्तकों, अनुसंधान-सम्बन्धी कागजोंको तैयार करनेमें, एक-एक नयी बातको एकत्रित करनेमें उन्हें रात-रातभर जागना पड़ा था, जिनके बलपर वे संसारको एक नयी चीज देना चाहते थे, जो उनके जीवनका प्रधान लक्ष्य था, वह सब राखके ढेरमें एकाएक बदल गया था।

इन सबकी हानि करनेवाला कसूरवार डायमंड वहीं खड़ा न्यूटनकी ओर अबोध नेत्रोंसे देख रहा था।

बीस वर्ष ! कठोर श्रम ! जीवनभरकी कठिनाइयाँ ! समस्त सुख-सुविधाओंको तिलाञ्जलि······मुसीबतोंसे संघर्ष उफ् ! कितना दुःख ! कितनी भारी निराशा !

और कोई होता, तो कदाचित् मानसिक आघातसे पागल ही हो जाता !

अथवा क्रोधसे उन्मत्त होकर तुरंत ही उस छोटे कुत्तेको मृत्युदण्ड दे देता !

न्यूटनमें मुसीबतोंमें भी मानसिक संतुलन स्थिर रखनेकी अद्भुत आत्मशक्ति थी। वे मानते थे कि कठिनाइयोंसे

गुजरे बिना कोई अपने लक्ष्यको नहीं पा सकता । वे कहा करते थे कि जिस उद्देश्यका मार्ग कठिनाइयोंके बीचसे नहीं जाता, उसकी उच्चतामें संदेह करना चाहिये । कठिनाइयाँ मनुष्यको चमकाने और उसे तेजवान् बनानेके लिये ही आती हैं। कठिनाइयोंका साधनामें वही महत्त्व है, जो उद्योग-में श्रमका और भोजनमें रसका है ।

न्यूटनने अपनी सदैवकी-सी दयासे कुत्तेके सिरको थपथपाया, यद्यपि उनका हृदय दुःखसे भारी था ।

'ओ डायमंड ! डायमंड !! जो हानि तूने की है, उसे तू नहीं जानता !'

इस घटनाके कुछ समय बादतक न्यूटनके स्वास्थ्य और मानसिक शक्तियोंपर निराशाका दूषित प्रभाव रहा । उस छोटे कुत्तेके प्रति उनके व्यवहारका आप अनुमान लगा सकते हैं ।

लेकिन उन्होंने फिर साहस और उत्साहसे अपनी खोयी हुई शक्ति एकत्रित की । फिर समस्त कार्य किया । इस सब अनुसंधान और खोजमें उन्हें बहुत अधिक परिश्रम और कठोर साधना करनी पड़ी । उन्होंने फिर उत्साहसे अपना कार्य जारी रक्खा और अन्तमें उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की ।

कठिनाइयाँ मनुष्यको चमकाने और तेजवान् बनानेके लिये ही आती हैं । मुसीबतोंसे लोहा लेकर ही आदमीका चरित्र चमकता है और वह मनुष्यत्वसे देवत्वकी ओर बढ़ता है । कहा भी है—

रुहो रुरोह रोहितः । (अथर्ववेद १३ । ३ । २६)

अर्थात् उन्नति उसकी होती है, जो प्रयत्नशील है । भाग्यके भरोसे बैठे रहनेवाले सदा दीन-हीन ही रहेंगे ।

ब्रूस आखिर जीत गया

स्काटलैण्डका राजा ब्रूस अपने शत्रुओंद्वारा पराजित हुआ । उसके संगी-साथी छूट गये । धन-जनकी बड़ी हानि हुई । जीवन बड़ा लाञ्छित और पराजित था । बस, यों कहिये कि किसी प्रकार जीवनमात्र बच गया था । शत्रु उसकी टोहमें थे ।

प्राण बचानेके लिये वह भागा-भागा फिर रहा था । मौत उसपर अपने क्रूर पंजोंको फैलाये नाच रही थी । स्थिति यह थी कि अब मरा, अब मरा !

राजा ब्रूस एक खोहमें छिपा बैठा अपनी मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहा था । कैसी क्रूर होगी उसकी मौत ! शत्रुकी तलवार पलभरमें उसका काम तमाम कर देगी । उफ !!

वह गिरा, गिरकर मन-ही-मन छटपटाता रहा । उसकी आत्मा किसी आश्रयकी खोजमें थी । उसने सामने एक दृश्य देखा ।

एक नन्ही-सी मकड़ी खोहके मुँहपर जाला बुननेमें सतत और अथक प्रयत्नशील थी । वह बार-बार गिरती, बार-बार उठती । कई बार धूलमें गिरी, कई बार अपने शरीरको झाड़कर उठी और फिर नये उत्साहसे जाला बुननेका प्रयत्न किया ।

'यह व्यर्थका प्रयत्न कर रही है । इसके पास कोई आधार नहीं है । बिना आधार अपना जाला बुननेका प्रयत्न कर रही है । बार-बार असफल हो रही है । यह कभी भी जाला न बुन पायेगी । मर जायगी ।' ब्रूस यही सोच रहे थे ।

आश्चर्य ! बड़ा आश्चर्य ! ब्रूसने देखा कि मकड़ीका एक झीना-सा सूत्र खोहके मुँहपर अटक गया ।

अब क्या था ! एकके बाद कई सूत्र अटके और मकड़ीका जाला बुना जाने लगा । थोड़ी देर बाद पूरी खोहके मुँहपर जाला तैयार था ।

शत्रुके सिपाही उधर आये, किंतु खोहपर मकड़ीका बुना हुआ जाला देख वापस लौट गये । जब जाला है, तो अंदर कोई कैसे हो सकता है ?

आयी हुई मौत तो वापस लौट गयी, पर ब्रूसको एक गहरे विचारमें निमग्न छोड़ गयी ।

वह अब सोच रहा था, 'जब यह मकड़ी बार-बार गिर-गिरकर भी निराश और परास्त नहीं हुई, तो मैं तो मजबूत हाथ-पाँववाला आदमी हूँ । मैं तो बहुत कुछ कर सकता हूँ । मैंने कैसी गलती की कि तनिक-सी हारसे निराश हो गया और प्रयत्न करना छोड़ किस्मतको दोष देने लगा । मुझमें कायरता आ गयी । उसने मेरी ऊँची ताकतोंको शिथिल कर दिया । लेकिन यह मकड़ी मुझे नयी प्रेरणा दे गयी है । अब मैं फिर पूरी ताकतसे प्रयत्न करूँगा । मैं अवश्य जीतूँगा । मैं अपने शत्रुओंको जरूर परास्त करूँगा; क्योंकि इस मकड़ीने मेरा संकल्प मजबूत कर दिया है ।' वह खोहसे निकल आया । अब वह बिल्कुल बदला हुआ नया आदमी था ।

वह चुपचाप लौट गया। अपने बिछुड़े हुए साथियोंको संगठित किया और अन्तमें विजयी हुआ।

ब्रूसके जीवनका निष्कर्ष निम्न पंक्तियोंसे स्पष्ट होता है—

'मनुष्यका विकास कठिनाइयोंसे सदा लड़ते रहनेसे होता है। जो व्यक्ति कठिनाइयोंसे जितना दूर भागता है, वह अपने-आपको उतना ही निकम्मा बना लेता है और जो उन्हें जितना ही आमन्त्रित करता है, वह अपने आपको उतना ही वीर और साहसी बनाता है। इच्छाशक्तिका बल बढ़ानेके लिये सदा-सर्वदा जीवनभर कठिनाइयोंसे लड़ते रहना आवश्यक है।'

जिसने निराश होना नहीं जाना

एक आधुनिक व्यक्तिकी आशाओं-निराशाओं, हार-जीत और संघर्ष-विजयका यह वृत्तान्त देखिये, कितना प्रेरक है। यह आदमी तीस वर्षोंतक निराशासे युद्ध करता रहा और अन्तमें उसने निराशाको परास्त कर ही दिया।

बार-बार हारपर भी हिम्मत न हारी और अन्तमें विजय प्राप्त की। सन् १८३१ में उस व्यक्तिको व्यापारमें बड़ी हानि हुई। हाथका संचित सारा रुपया जाता रहा। उसने सोचा था, व्यापारके क्षेत्रमें मैं सबसे ऊँचा उठ सकूँगा; पर उसे इस नुकसानसे ज्ञात हुआ कि व्यापारका क्षेत्र उसके लिये नहीं था।

फिर भी वह परास्त नहीं हुआ। उसने मन-ही-मन कहा, 'बाहरी कठिनाइयाँ तो बदलती रहती हैं। मनुष्यकी सच्ची कठिनाइयाँ तो आन्तरिक हैं। वे मुझमें नहीं हैं। मैं अब नये क्षेत्रमें उन्नतिका प्रयत्न करूँगा।'

निर्बल तथा निराश मन सदा कायरताकी अभद्र कल्पनाएँ किया करता है। पर यह व्यक्ति सदासे आशावादी था। वह मनसे साहसी और शूरवीर था। वह मनमें दृढ़तासे विश्वास किये हुए था कि मैं अपने चारों ओरकी विपत्तियोंको मनोबलसे परास्त करके ही रहूँगा। अतएव उसने कठिनाइयोंसे सदा लड़नेका रास्ता चुना।

अब उसने अपने देश—अमेरिकाकी लेजिस्लेचरमें चुनाव लड़ा। खूब तैयारियाँ कीं। राजनीतिक दाँव-पेंच काममें लिये। जनताकी खूब सेवा की। सबको अपने पक्षमें करनेके लिये सचाई और ईमानदारीके सब साधन अपनाये। उसे सफलताकी पूरी आशा थी—

लेकिन हाय! लेजिस्लेचरके चुनावमें उसकी हार हुई। १८३२का वर्ष उसके लिये व्यर्थ गया।

वह फिर सोचने लगा, 'शायद मैंने गलती की है? क्यों न एक बार फिर व्यापार ही करूँ?' उसने फिर व्यापार प्रारम्भ किया।

सन् १८३३ में उसे व्यापारमें फिर भयंकर नुकसान हुआ। अब क्या करे? कौन-सा क्षेत्र ठीक रहेगा उसके लिये? उसने १८३४ में फिर नये उत्साहसे, नयी तैयारीसे लेजिस्लेचरका चुनाव लड़ा।

सन् १८३५ में भाग्यने एक ठोकर और मारी। वह उसके व्यक्तिगत जीवनसे सम्बन्धित थी। इस वर्ष उसकी प्रिय पत्नीकी मृत्यु हो गयी।

साधारण आदमी शायद इस मानसिक आघातसे पागल हो जाता; पर उसका गुप्त साहस और कार्यक्षमता बढ़ती जा रही थी। वह हिम्मत बाँधे हुए था। कठिनाइयोंसे लड़ते-लड़ते सन् १८३६ में वह स्नायु-रोगसे पीड़ित हो गया। उसने फिर स्पीकरके चुनावमें लड़नेका प्रयत्न किया।

लेकिन आपत्तियाँ एकके बाद एक उसपर बिजलियोंकी तरह टूटती ही रहीं।

सन् १८३८ में स्पीकरके चुनावमें हार!

जीवन फिर बहुत वर्षोंतक कठिनाइयोंसे लड़नेमें व्यतीत होता रहा। सन् १८४३ में लैण्ड-अफसरकी नियुक्तिमें हार।

भयंकर मानसिक आघात। विधिका क्रूर चक्र!! मौतके कुटिल पंजे अब उसे दबोचनेके लिये बाहर निकल आये।

फिर भी उसका उत्साह और शौर्य चलता रहा। उसने हिम्मत नहीं हारी। अब उसके मनोबल और विरोधी परिस्थितियोंमें युद्ध चल रहा था। उसकी पराजय और भी हुई—

कांग्रेसके चुनावमें हार—१८४६। फिर भी वह कठिनाइयोंसे लड़नेको तत्पर। दुबारा चुनावमें हार १८४८। वह फिर भी आपत्तियोंसे युद्ध कर रहा है। सिनेटके चुनावमें हार—१८५५। वह जीवन-युद्धमें लगातार आगे बढ़ रहा है। विकट परिस्थितियोंसे भयभीत नहीं हो रहा है। वह वाइस प्रेसीडेंटके पदके लिये लड़ रहा है।

वाइस प्रेसीडेंटके चुनावमें हार—१८५६।

वह अपना सर्वस्व खोनेको तैयार है, पर खतरनाक परिस्थितियोंसे हार नहीं मान रहा है। जमकर पूरी हिम्मतसे

लड़ रहा है। वह अपनेमें ही नहीं, आस-पासके व्यक्तियोंमें भी वीरताके भाव जाग्रत् कर रहा है।

सिनेटके चुनावमें हार—१८५८।

उसे सत्ताईस लंबे वर्ष संघर्ष करते-करते व्यतीत हो गये हैं; पर उसका साहस दृढ़ है। कोई और व्यक्ति होता तो दस बार टूटकर समाप्त हो जाता, पर वह कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त करनेमें लगा हुआ है। वह कठिनाइयोंको परास्त करके रहेगा।

समय बदलता है। अब परिस्थितियाँ उसके पक्षमें हो रही हैं। वह स्वावलम्बनमें विश्वास रख रहा है। लीजिये, वह जीत गया। विजय-श्री उसे प्राप्त हो गयी है।

प्रेसीडेंटके चुनावमें जीत—१८६० और सर्वोच्च पदकी प्राप्ति। तीस वर्षोंतक निराशाके झूलेमें झूलते रहनेपर भी आशाकी ज्योति, पूर्ण विजय, सार्वजनिक सम्मान, यश और विजय-वैजयन्तीको फहरानेवाला यह साहसी पुरुष कौन था।

यह गाँवका एक गरीब युवक था।

यह वह साहसी व्यक्ति था, जो इच्छाशक्तिके कारण मुसीबतोंके तूफानसे घिर जानेपर भी कभी निराश नहीं हुआ।

यह वह आदमी था, जिसने दुर्भाग्यके आगे कभी हार नहीं मानी, दृढ़ आत्मविश्वासका सम्बल लेकर नित्य-नवीन उत्साहसे; जीवन-पथपर आगे बढ़ता चला गया।

वह था अमेरिका-जैसे विशाल देशका भूतपूर्व राष्ट्रपति

अब्राहम लिंकन

अब तनिक सोचकर देखिये, यदि यह व्यक्ति एक-दो हार या पराजयोंसे भयभीत हो साहस छोड़ देता, तो तीस वर्षों बाद कैसे इतना यश और सम्मान प्राप्त कर सकता था।

फिर आप तनिक-सी मुसीबतसे क्यों निराश हो रहे हैं ?

साहसी बनिये और उसका व्यापक अर्थ समझिये—

एच्० जी० वेल्सका दृष्टिकोण देखिये। आज साहसिकताका परिवर्तित अभिप्राय क्या है ? वे कहते हैं—

पहलेके जमानेमें शूरवीरता और साहसिकताका जो मतलब था, वह अर्थ आज बदल चुका है। कलकी वैयक्तिक साहसिकता आज सामूहिकतामें बदल चुकी है।

पहले कोई एकको विजय कर लेनेमें साहसी और वीर समझा जाता था, किंतु आज उस छोटे दायरेका कोई महत्त्व नहीं रह गया है। अपने व्यक्तिगत साहसको केवल अपनी व्यक्तिगत भलाईके लिये काममें लाना, आजके जमानेमें अच्छा नहीं समझा जायगा।

आजकी साहसिकतामें वे सभी कार्य शामिल हैं, जो मनुष्यकी भलाईके हैं। आज नवीन ग्रहमण्डलोंकी खोज, उनपर मनुष्यकी विजय-पताका फहरानेको साहसिकता कहा जायगा। आज गंदी बस्तियों और ग्रामोंमें धनहीन होते हुए भी जागरण और जीवन लानेके प्रयत्नको साहसिकताकी परिधिमें लाना होगा। आज गरीबी, भुखमरी, अज्ञान, अशिक्षा, मलिनता, पशुता और अत्याचारके विरुद्ध संग्राम छेड़ना साहसिकता है। मानवजातिके सबसे बड़े शत्रुके विरुद्ध अभियान साहसिकताका प्रमाण है।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय।

(अथर्ववेद १२।२।२२)

याद रखिये, यह जिंदगी हँसते-खेलते जीनेके लिये है। चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, निराशा आदिमें पड़े रहना महान् मूर्खता है।

निराश न होकर प्रभु-कृपापर विश्वास करो

भय, व्याकुलता, क्रोध, निराशा, चिन्ताको दो पूरा त्याग।
छोड़ो मोह, विषाद, बुझा दो वैर-द्वेषकी भीषण आग॥
आशा, धैर्य, शान्ति, साहस हो पूर्ण भरा मनमें उल्लास।
निश्चय हो साफल्य-सिद्धिका, रहे पूर्ण प्रभुपर विश्वास॥
रहो सदा प्रभुके शरणागत, प्रभुके लिये करो सब काम।
रहो अचल सत्पथपर, लेते रहो सदा श्रीहरिका नाम॥
प्रभु-आश्रयके साथ रहेगा जहाँ नित्य सत्कर्मोत्साह।
विजय, विभूति, कीर्ति, श्री, निश्चित नीति रहेंगी वहाँ अथाह॥

भगवान् शंकरका शाश्वत नृत्य

(लेखक—श्रीअशोक महाजन)

भगवान् शंकरको पुराणोंमें 'रुद्र' कहा गया है; क्योंकि वे प्रत्याहारके, प्रलयके आकर्षण हैं। वे परम नर्तक, महान् नटराज भी हैं। भगवान् शंकरका नृत्य शाश्वत है; क्योंकि उनमें कल्याणकी मङ्गलमयी अनुभूति भी शाश्वत है। यह विश्व ही उनकी नृत्यशाला है। संसारमें अणु-परमाणुसे लेकर बड़ी-से-बड़ी शक्तिमें जो स्पन्दन दिखलायी पड़ता है, वह उनके नृत्य एवं नादका ही परिणाम है। स्वयं भगवान् शंकरने स्वीकार किया है—

नित्यमात्तकरणक्रमोन्निषच्चित्रभावशतसन्निवेशिनीः।
निष्क्रियो निजमरीचिनर्तकीर्नर्तयामि परनृत्तदेशिकः॥

अर्थात्, मैं सबसे उत्तम नाट्यका आचार्य निष्क्रिय होकर अपनी करणेश्वरीरूपी नर्तकियोंको नचाता हूँ, जो इन्द्रियदेवियाँ सदैव अपने वृत्तिक्रमके प्रत्याहरणसे उदय होनेवाले अद्भुत और भिन्न-भिन्न प्रकारके भावोंके सन्निवेशवाली हैं।

नृत्यसे भगवान् शंकर ब्रह्माण्डमें गति लाते हैं और जीव-निर्जीवकी सृष्टि करते हैं। उनके नृत्यकी गति है उपरति, निवृत्ति, समाधि, प्रलयकी ओर—अर्थात् अन्तरतमकी, ऊर्ध्वतमकी ओर। उनका नृत्य भयंकर है लेकिन शिवत्वसे शून्य नहीं। वे ब्रह्माण्डका कभी भी विनाश नहीं चाहते। वे तो स्रष्टा हैं, पालक हैं, कल्याण करनेवाले हैं। उन्हें संहार कतई प्रिय नहीं। लेकिन जब पाप अपनी चरम स्थितिको प्राप्त कर लेता है तो उनका नर्तन विवश होकर प्रलयंकारी रूप ग्रहण कर लेता है परंतु शिवकी यह क्रिया भी निःसंदेह जगत्की रक्षाके लिये ही होती है—

जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।

पुष्पदन्तने लिखा है—'नर्तनके समय शंकरके पदाघातसे पृथ्वी डोलने लगती है। परिघकी तरह परिपुष्ट भुजाओंके घूमनेसे आकाश संत्रस्त हो उठता है। लेकिन उस समय भी शंकरके मनमें संहारकी नहीं, निर्माणकी भावना ही होती है।'

शंकरका नृत्य यथार्थमें ईशकी पञ्चक्रियाओं (सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह) का द्योतक है। अलग-अलग ये क्रियाएँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिवकी क्रियाएँ हैं। इन समस्त क्रियाओंकी निष्पत्ति शिवसे है—यही नटराजकी प्रतिमाका संकेत है।

भगवान् शिवका नटराज-नृत्य उनके महिमामय स्वरूप और अमित ऐश्वर्यकी अभिव्यक्ति करता हुआ तथा 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का अमर संदेश देता-सा प्रतीत होता है। नटराजके रूपमें शिवकी कल्पना भारतीय संस्कृति और धर्मकी एक ऐसी समन्वयात्मक विशेषता है जिसका दूसरा उदाहरण अन्यत्र उपलब्ध नहीं। चतुर्भुज नटराजके एक हाथमें रजोगुणका प्रतीक डमरू है जो धाता, पृथ्वी, अनन्तलोक और जीव-जगत्की सृष्टि करता है और उनके दूसरे हाथमें है तमोगुणकी प्रतीक अग्नि, जिससे वे उन बन्धनोंका संहार करते हैं जो मानवात्माको बाँधे रहते हैं। भूमिपर आरोपित एक चरणसे वे माया, मोह और अविद्याको दाबे रहते हैं और उठे हुए दूसरे पैरसे संकटोंसे त्रस्त प्राणियोंको मुक्ति देते हैं। कटिवस्त्र दिक् और भुजाओंपर लिपटा हुआ सर्प कालका प्रतीक है।

'अंशुमदभेदागम'में नटराजके चारों हाथोंका वर्णन यों किया गया है—नटराजकी मूर्ति उत्तम दशतालमें बनती है। नटराज-मूर्तिका सामनेका बायाँ हाथ

दण्डहस्त या गजहस्त मुद्रामें होकर उत्थित वामपादकी ओर संकेत करता है। दूसरे वामहस्तमें पञ्चस्फुलिंगयुक्त अग्नि रहती है। सामनेका हाथ वरद मुद्रामें होता है। पीछेके दाहिने हाथमें डमरू होता है। डमरूका विशद और अद्भुत वर्णन पुराणों एवं अन्य ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। संस्कृतके प्रसिद्धिप्राप्त वैयाकरण पाणिनिके कथनानुसार, भगवान् शंकरके नृत्य करते समय उनके डमरूके घोषसे जो अ इ उ ण……इत्यादि चौदह वर्ण निकले, उन्हें सनकादि ऋषियोंने संगृहीत किया और उसीसे संस्कृत भाषाकी उत्पत्ति हुई—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

शिवकी जटा-लटाएँ पाँचसे तेरहतक दिखलायी गयी हैं। जटाओंमें नरकपाल और चन्द्रमा भी दिखाये गये हैं जो अमृत-तत्त्वके प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त धर्मकी प्रतीक गङ्गाका स्रोतस्थान भी उनकी जटाएँ ही हैं। उनकी लंबी जटाएँ वैसे सदा बँधी रहती हैं लेकिन युगान्तरोंमें (जब पापी और राक्षसी शक्तियोंसे विश्व त्रस्त हो उठता है) एकाध बार सृष्टिके त्राणके लिये खुलती हैं।

यद्यपि ब्रह्माण्ड नटराजकी नाट्यशाला है, लेकिन उनकी व्याप्ति अनन्त है। आकाश उनका शरीर है। आठों दिशाएँ उनकी भुजाएँ हैं। तीनों ज्योति उनके तीन नेत्र हैं। शिवका प्रथम नेत्र धरातल, द्वितीय आकाश, तृतीय बुद्धिके अधिदैव सूर्य एवं ज्ञानाग्निका सूचक है। इसी तृतीय नेत्रके खुलनेसे काम भस्म हो गया था। शिवकी निर्निमेष तापस ऊर्ध्व दृष्टि कुटिलको सरल बनाती है, अस्पष्टको स्फुट करती है और द्विधाको स्थिर निश्चित कर देती है।

नटराज सर्वाङ्गमें विभूतिसे अनुलिप्त—आच्छन्न रहते हैं। भस्म मौलिक तत्त्व है, इसे नष्ट नहीं किया जा सकता। शिवपुराणमें तो यहाँतक कहा गया है कि भस्मसे ही शंकरजी सृष्टिकी रचना करते हैं। नटराजकी कुछ प्रतिमाएँ त्रिशूलधारी हैं। त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंका सूचक है। त्रिशूल ही उनका परम प्रिय अस्त्र है।

नटराज-स्वरूपकी कथा

भगवान् शिव तो आशुतोष हैं, वे किसीका अकल्याण नहीं चाहते, फिर उन्होंने नटराज-स्वरूप क्यों ग्रहण किया? इस सम्बन्धमें दक्षिणमें बहुत-सी कथाएँ प्रचलित हैं। सर्वमान्य और सर्वाधिक प्रसिद्ध कथा यह है कि तारगम नामक एक निर्जन स्थानमें कुछ मीमांसक अभिमानी ऋषिगण निवास करते थे और वहाँके लोगोंको अपने स्वार्थोंकी सिद्धि-हेतु तंग किया करते थे। उनका मिथ्याभिमान चूर करनेके लिये वहाँकी जनताने शिवाराधना की। फलतः ऋषियोंके समक्ष भगवान् शिव गये, परंतु अभिमानी ऋषियोंने उन्हें वहाँ देखकर उनका सम्मान न किया और उल्टा उनके प्रति क्रोध प्रकट किया। अभिमानी ऋषियोंने वाराहको भगवान्पर आक्रमण करनेका आदेश दिया। भयानक गुर्राहटके साथ वह शिवजीपर टूटा; परंतु अमित बलशाली भगवान्ने उसे पकड़कर एक छिंगुलीमात्रसे उसकी खाल उधेड़ डाली और उसे पहन लिया। यह देखकर ऋषिगण आगबबूला हो उठे और भयंकर विषधर नागको शिवजीकी ओर फेंका, परंतु ज्यों ही वह शिवजीके पास पहुँचा, उन्होंने उसे गलेमें मालावत् लपेट लिया। क्रोध और अभिमानमें पागल ऋषियोंने अपने मन्त्रबलसे वहाँ एक राक्षस पैदा किया। वह राक्षस भीषण गर्जना करता हुआ भगवान् शंकरकी ओर दौड़ा, किंतु महिमामय भगवान्ने उसे पकड़कर पैरोंसे रौंद डाला और उसके शवपर खड़े होकर नृत्य करने लगे। यही भगवान् शिवके नटराज-स्वरूपके प्राकट्यकी कथा है।

शंकर और शक्ति

शंकर कभी अकेले नृत्य नहीं करते, नृत्यके समय उनकी अर्द्धाङ्गभूता शक्ति (गौरी) उनके साथ रहती हैं । प्रदोषस्तोत्रमें लिखा है—

कैलासभवने त्रिजगज्जनित्रीं
गौरीं निवेश्य कनकशैलाचितरत्नपीठे ।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
देवाः प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे ॥

लेकिन शंकरका यह अनादि और अनन्त नृत्य केवल उन्हींको दिखलायी पड़ता है जो मायासे ही नहीं, महामायासे भी ऊपर उठ चुके हैं ।

चारित्र्यकी महत्ता

(संग्राहक—श्रीलल्लूभाई बकोरभाई पटेल)

'चारित्र्य' शब्द सामान्यतः एक व्यक्तिको दूसरे व्यक्तिसे पृथक् करनेवाले गुणोंके समूहके लिये प्रयुक्त होता है । ग्रीक भाषामें इसके पर्यायवाची शब्दका अर्थ है—'विशिष्ट चिह्न या छाप' ।

इस जगत्में चारित्र्य ही व्यवस्थापक नियम-शक्ति है । मर्त्य-स्वभावकी अमर्त्य भावना उच्च चारित्र्यके स्वरूपमें झलकती है । शुद्ध चरित्रवाले मनुष्य प्रत्येक स्थितिमें अपनी ईमानदारीसे, उच्च अभिलाषासे, शुद्ध वासनासे सबके ऊपर एक प्रकारका वशीकरण करते हैं ।

उनकी बात माननेका मन होता है । उनके ऊपर विश्वास होता है । उनके ऊपर श्रद्धा होती है । उनका अनुकरण करनेकी बारंबार इच्छा होती है ।

विश्वमें जितनी बातें श्रेष्ठ मानी जाती हैं, जिनके-जिनके कारण मनुष्य-जातिका कल्याण सिद्ध होता है, चारित्र्य उन सबोंका रक्षण करनेवाली एक रज्जु है ।

सर वाल्टरसे एक आदमीने कहा कि 'विद्वानोंका बड़ा मान होना चाहिये ।' तब उन्होंने कहा कि 'माफ करो भाई, ऐसा ही होता तो यह विश्व केवल निर्माल्य-स्वरूप और दुःखद हो जाता । मैं तो महापण्डितोंकी अपेक्षा ग्रामीण लोगोंके चेहरेपर अधिक सद्वृत्ति और अधिक चारित्र्य देखता हूँ ।'

एक अंग्रेजने लिखा है कि 'एक मुट्ठी चारित्र्य एक मन विद्याके बराबर है ।'

इस प्रकार देशकी प्रजाकी, जनताकी, कुटुम्बकी, सबकी महत्ता और सुख-सम्पत्ति व्यक्तिके चारित्र्यके ऊपर निर्भर करती है । चारित्र्य ही सब प्रकारकी महत्ताका रहस्य है ।

चौदहवें लुई राजाने कोलबरसे पूछा कि 'फ्रांस-जैसे महान् और जनसंख्यासे भरपूर देशके ऊपर राज्य करते हुए भी हालैंड-जैसे राज्यको क्यों नहीं जीत सकते ?'

प्रधानने उत्तर दिया कि 'किसी देशकी महानताका आधार उस देशके विस्तारपर नहीं, बल्कि उसकी प्रजाके चारित्र्यके ऊपर निर्भर करता है ।'

'चारित्र्य ही बल है, सत्ता है । इससे मित्र मिलते हैं, फण्ड इकट्ठे होते हैं, सहायता और समर्थन मिल सकता है तथा धन-दौलत, प्रतिष्ठा और सुखका विश्वसनीय और सरल मार्ग खुल जाता है ।'

'जैसे जगत्में मनुष्यसे बड़ा कोई प्राणी नहीं है । उसी प्रकार मनुष्यमें चारित्र्यसे बड़ा कोई गुण नहीं ।'

'प्रत्येक वस्तु—उपदेश, काव्य या चित्रके पीछे चरित्र रहना चाहिये और चारित्र्यका बल उसको मिलना चाहिये । इसके बिना उनमें किसीकी भी कीमत एक तिनके-जितनी भी नहीं है ।

'चारित्र्य एक ऐसा हीरा है जो दूसरे पत्थरोंको घिस सकता है ।'

एक विद्वान् कहता है कि 'जो अंदरसे निर्दोष है, उसके द्वारा वह बाहरसे भी सुसज्जित है ।'

'व्यवहारमें जैसे पूँजी मूलधन होता है, वैसे ही जीवनमें चारित्र्य एक मूलधन पूँजीके समान है ।'

'प्रत्येक देशमें ऐसे स्त्री-पुरुष होते हैं, जो बोलनेके पूर्व ही चारित्र्यके द्वारा विजय प्राप्त कर लेते हैं ।'

'मणि, स्वर्ण, राजमुकुट और स्वयं राजसत्तासे भी बढ़कर चारित्र्यकी कहीं अधिक कीमत है और इस प्रकारके चारित्र्यकी रचना करना जगत्‌में श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ वस्तु है ।'

'सभी मनुष्य यथासाध्य अपने-अपने भावके अनुसार अच्छा करते हैं, परंतु उन सबमें जो मनुष्य सहज ही दृढ़ चारित्र्यका निर्माण करता है, उसीका कार्य सबसे श्रेष्ठ तथा सरस है, यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है ।'

'संसारमें सब धनोंसे बड़ा एक धन है और वह धन चारित्र्य है ।'

'जिस सज्जनके पास यह धन है, वह गरीब हो तो भी एक चक्रवर्ती सम्राट्‌से भी उसका ऊँचा स्थान है ।'

'चारित्र्य जीवनका एक ऐसा पासा है कि जिसकी ओर सुख और चित्तकी शान्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले प्रत्येक मनुष्यको चाहे वह युवा हो या वृद्ध, पूरा लक्ष्य रखना चाहिये ।'

'संसारमें सब धनसे बढ़कर श्रेष्ठ धन एक चारित्र्य है । जिस सज्जनके पास यह धन है, वह गरीब होनेपर भी एक चक्रवर्ती महाराजासे भी ऊँचा स्थान रखता है ।'

'धन चला गया हो तो कुछ भी नहीं गया, तन्दुरुस्ती चली गयी तो कुछ चला गया (गँवा दिया), परंतु यदि चारित्र्य-बल नष्ट हुआ तो हाय ! सभी कुछ खो दिया ।'

'उत्साहके साथ-साथ कर्त्तव्य, सत्य और प्रेम ही चारित्र्यका यथार्थ रूप है ।'

'चारित्र्यका विद्या, ज्ञान या वैभवके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है ।'

'चारित्र्यके निर्माणकी सबसे बड़ी पाठशाला घर है । चारित्र्यकी विजय ही विजय है, और कोई विजय नहीं है ।'

'चारित्र्यके बिना दूसरी कोई भी वस्तु शक्ति और सनातन तत्त्वको प्रदान नहीं कर सकती ।'

'शुभ इच्छाओंके विकसित स्वरूपको ही चारित्र्य कहते हैं ।'

'सदाचार चारित्र्यकी सीढ़ी है ।'

'चारित्र्य जीवनकी अति मूल्यवान् वस्तु है ।'

'सत् चारित्र्यके बिना ज्ञान निन्दा करनेका साधन बन जाता है । उदाहरणके लिये दुनियाँमें बहुतेरे 'चालाक चोर' और 'सफेद ठग' होते हैं ।'

'व्यक्तिके चारित्र्यसे ही राष्ट्रका मूल्याङ्कन हो सकता है ।'

'चारित्र्य-निर्माणका कार्य महत्त्वहीन नहीं है । इसके बिना आजादी प्राप्त करके भी भारतीय जनताका मूल्य नहीं बढ़ सकता ।'

'चारित्र्य दुनियाँके सारे खजानोंसे बड़ा महत्त्वपूर्ण खजाना है ।'

'ज्ञानके ढेरकी अपेक्षा चारित्र्यकी एक चूँटी क्या बढ़कर नहीं है ?'

'चारित्र्यकी रक्षा किसी भी मूल्यपर अवश्य करनी

चाहिये । शिक्षकोंके लिये चारित्र्यके निर्माणके समान रचनात्मक कार्य कोई दूसरा नहीं है ।'

'शिक्षाका उद्देश्य चारित्र्य-निर्माण ही होना चाहिये ।'

'सच्ची शिक्षा वही है जिससे साहसका विकास होता है, गुणोंमें वृद्धि होती है और उच्च उद्देश्यके लिये लगन जाग्रत् होती है ।'

'यदि हम व्यक्तिके चारित्र्यका विकास कर लें तो समाज अपना विकास आप कर लेगा । इस प्रकारके विकासशील मनुष्योंके हाथमें समाजका संगठन सौंपा जा सकता है ।'

'चारित्र्यके विकासकी पहली शर्त है केवल आन्तरिक विश्वास ।'

'यदि चारित्र्य-निर्माण नहीं होता है तो सारा रचनात्मक कार्यक्रम व्यर्थ है ।'

'भगवान् किसी ग्रन्थविशेषमें नहीं हैं । वे तो मनुष्यके चारित्र्यमें हैं । चारित्र्य नीतिमें है, नीति सत्यमें है और सत्य ही शील है ।'

परिवार-नियोजन—मातृत्वकी विडम्बना

(लेखक—संत श्रीविनोबाजी)

एक दृष्टिकोण

परिवार-नियोजनमें मैं देशका कल्याण देखता नहीं, बल्कि इसमें आध्यात्मिक और नैतिक मूल्योंकी हार है, ऐसा मैं मानता हूँ ।

परिवार-नियोजनके अनुकूल बड़े-बड़े लोग हैं, अच्छे विचारक उस पक्षमें हैं । लेकिन यह मानते हुए भी और उसके अनुकूल सोचनेकी पूरी चेष्टा करनेपर भी मेरी राय बनी कि यह चीज चार आश्रमकी हमारी प्रतिष्ठाको उखाड़ेगी और मैं चार आश्रम स्थापनाकी आशा छोड़ नहीं बैठा हूँ ।

लोग चार वर्णोंकी बात कहते हैं कि वह दोषास्पद है और इसलिये वर्ण मिटाना चाहिये, वगैरह । लेकिन वर्णोंका आश्रमके साथ सम्बन्ध नहीं है, बल्कि शास्त्र कहता है कि आदर्श समाज होगा, तब उसमें एक ही वर्ण होगा—हंस-वर्ण । इसलिये वर्ण हर सामाजिक परिस्थितिमें जरूरी नहीं है, लेकिन आश्रम जरूरी है । जिस दिन चार आश्रमकी स्थापनाकी आशा मैं छोड़ूँगा, उस दिन हिंदू होनेका दावा छोड़ दूँगा और कहना चाहिये कि यह सिर्फ हिंदुओंकी वस्तु नहीं है । मुहम्मदने भी लिखा है कि चालीस सालके बाद मनुष्यका लक्ष्य भगवान्की ओर होना चाहिये, और जाता है । उसने ४०की मर्यादा मानी, जिसमें मनुष्यको विषयवासनासे अलग होना चाहिये ।

अपने यहाँ परिवार-नियोजनमें तो अजीब-सी बात है कि उसमें भी साम्प्रदायिकता दाखिल हुई है । बंगालमें मैंने सुना कि 'फैमिली प्लानिंग' आयेगा तो मुसलमानोंकी संख्या अधिक हो जायगी । यह डर मुझे है नहीं । मैं किसीको जन्मसे न हिंदू मानता हूँ, न मुसलमान । जो विचारपूर्वक ग्रहण किया जाता है, वही धर्म है । उपर्युक्त तरीकेसे सोचना धर्म—आचरणकी नहीं, अभिमानकी बात है । इसलिये मुझे यह डर नहीं । लेकिन बात ऐसी है कि उसमें कम्युनलिज्म है, लेकिन उसपर (परिवार-नियोजनपर) जो आध्यात्मिक आक्षेप है, उसे मैं मानता हूँ । मैं एक महान् चिन्तनशील

लेखककी भाषा इस्तेमाल कर रहा हूँ कि उसमें 'डेस्ट्रक्शन आफ डिफेन्सलेस लाइफ' (अरक्षित जीवनका विनाश) होगा।

उपनिषद्में कहा है कि जहाँ पति-पत्नीसंगम हुआ, वहाँ उस वीर्यके साथ एक जीवात्माने अपने जन्मका रास्ता खोज लिया है। अगर आप ब्रह्मचारी रहते हैं या संतान-हेतुसे संगमपर गृहस्थ-निष्ठा रखते हैं, ऐसी सूरतमें अगर संगम हो तो उस संगमके साथ एक मानवकी आत्माको मूर्तिमान् होनेका मौका मिलना ही चाहिये।

कोई किसान नहीं कहेगा कि बीज ऐसे ढंगसे बोओ कि जिससे वह उगे ही नहीं। इसको मूर्खता समझेंगे। अनाज बोनेमें उसकी फलवत्ता अनिवार्य है तो वीर्य बोनेमें वह अत्यन्त अनिवार्य है, जिस वीर्यसे महान् पुरुष जन्मे हैं। हमारा जन्म देनेवाले माता-पिताका उपकार मनुस्मृतिमें आचार्यसे भी ज्यादा माना है। कहा है कि मन्त्र देनेवाले दस गुरुके बराबर एक आचार्य, ऐसे शत आचार्योंके बराबर एक पिता और हजार पिताके बराबर माता। माताका गौरव सबसे ज्यादा। अब उसी मातृस्थानकी विडम्बना इस प्रकारसे करना....।

तुलसीदासने कहा—इतनी अमूल्य वस्तुका खर्चा करके क्या कर रहे हो? सोचते नहीं, जिस वीर्य-शक्तिमेंसे महापुरुषका जन्म हो सकता है, उस वीर्य-शक्तिको ही अगर कुण्ठित करें तो गृहस्थ-निष्ठा ही गिरेगी। मैं कहता था कि अत्यन्त अमूल्य वस्तुका अत्यन्त हीन कार्यमें खर्च। इसका एक उदाहरण है संस्कृत भाषा। संस्कृत भाषाका उपयोग वेद, उपनिषद्, गीता आदि पढ़ानेमें नहीं करते, शृंगारिक साहित्य पढ़ानेमें करते हैं। इससे अधिक मूर्खता नहीं।

स्वामी विवेकानन्दने लिखा है कि क्या आत्माके ज्ञानका प्रचार चाहते हैं? तो संस्कृत सिखाइये। इतनी संस्कृतकी महिमा है। लेकिन इधर सिनेमा, गाने, शृंगारिक साहित्य बढ़ाते हैं और उधर मनुष्योंकी संख्या कम हो, यह भी चाहते हैं।

इसका यानी ब्रह्मचर्यका आध्यात्मिक मूल्यके अलावा सामाजिक मूल्य भी है। पुराने जमानेमें सामाजिक मूल्य थे नहीं। वेदोंमें आया है कि एक विवाहका मन्त्र—दश पुत्र और ग्यारहवाँ पुत्र पतिको समझ लें। यानी उसके बाद बढ़ना नहीं चाहिये। यानी मर्यादा रक्खो। लेकिन ऋग्वेदमें एक और वाक्य है—बहुप्रजः। जिसके बहुत प्रजा है, उसका नरकमें प्रवेश है। संस्कृतमें बहुका आरम्भ तीनसे होता है। इसके पहले एक-वचन, द्विवचन और बादमें बहुवचन। तो दो सतान मानते हैं। ऐसा भी वाक्य आया है। वह सनातन है और दश पुत्र—यानी विवाह-मन्त्र है। आजकी स्थितिमें पहलेवाला वाक्य लागू होगा। यह सारी स्थिति ब्रह्मचर्यके आधार-पर, गृहस्थाश्रम-निष्ठापर आधारित है।

हमारे पास गाँधी तककी परम्परा है। फिर भी मैं हार खाऊँ और कहूँ कि संतति-नियमनके लिये संयम-पर निष्ठा नहीं रखूँ और यह मार्ग लेता हूँ तो मैं मानता हूँ कि मैंने हिंदू-धर्मका दावा (तो) छोड़ ही दिया, लेकिन मानवतासे (भी) हार गया। इसमें हम मानवतासे ही परे हो जाते हैं। मानवका लक्षण संयम रखना है। (स० प्रे० स०)

सदाचार

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।'

'देव ! वत्सराज्यकी प्रजा चिन्तित है। स्वयं मुझे भी आश्रयकी अपेक्षा है।' नरेशने राज्यगुरु अनन्तशंकर आचार्यके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना की—'आपकी असीम कृपा एवं अकल्पनीय प्रतिमाने राज्यको अवतक निश्चिन्त रक्खा।'

'कोई अमर नहीं है' यह बात मैं समझता हूँ। स्वयं तुमसे इस सम्बन्धमें विचार करना था मुझे।' आचार्यने स्नेहपूर्वक कहा—'जराजीर्ण इस कलेवरको कालार्पण करनेका समय समीप आ गया है, यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। तुम इतना करो कि राजोद्यानमें देशके विद्वान् ब्राह्मणोंका सत्कार करनेकी घोषणा कर दो। आगे क्या करना है, मैं स्वयं देख लूँगा।'

'जैसी आज्ञा !' नरेशको आश्वासन प्राप्त हुआ। वे राजसदन लौट गये। उसी दिन चर भेज दिये गये देशके विभिन्न नगरोंमें वत्सनरेशकी 'विद्वत्-सत्कार-घोषणा' का प्रचार करनेके लिये।

वत्सराज्यके राज्यगुरु अनन्तशंकर आचार्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। अपने कुलमें वे अकेले ही बच रहे हैं। उद्भट विद्वान्, प्रोज्ज्वल प्रतिभाशाली, अतिशय नियमनिष्ठ तपस्वी तथा स्वभावसिद्ध भगवद्भक्त। ऐसा राज्यगुरु प्राप्त करके वत्सराज्य स्वयं समृद्ध ही नहीं हुआ, देशमें सम्मानित भी हुआ। दूरस्थ देशोंके नरेशोंका तथा ऋषिकल्प विद्वानोंका आतिथ्य-सौभाग्य प्राप्त होता रहा दीर्घकालतक; क्योंकि आचार्यके दर्शन तथा संसर्ग-लाभकी आकांक्षा प्रबल आकर्षण था सभीके लिये। लेकिन आचार्यकी शतवार्षिकी मनायी जा चुकी है। वे तपोधन दृढ़काय, सबल स्वस्थ हैं यह तो ठीक; किंतु ऐसे महापुरुष रोग-शय्यापर तो शरीर छोड़ा नहीं करते। भगवान् काल जब चाहेंगे, देहसे अनासक्त आचार्य सहज उसी प्रकार देहदान उन्हें कर देंगे, जैसे कण्ठकी पुष्पमालाका प्रसाद प्रसन्न भावसे नरेशको दे देते हैं। अब उनके उपरान्त वत्सराज्यका राज्य-गुरुपद किस महानुभावसे कृतार्थ हो, यह यदि आचार्य ही आदेश दे जायँ तो सबकी चिन्ता मिटे।

'विद्वत्सत्कार !' वत्सराज्यकी घोषणा कुतूहल एवं उत्साह दोनोंको देनेवाली थी। कोई यज्ञ, कोई सत्र, कोई तथ्य-निर्णायिका विद्वत्परिषद्—ऐसा कुछ नहीं। अवतक तो नरपतिगण ऐसे ही किसी अवसरपर देश-देशके विद्वानोंको आमन्त्रित किया करते थे। लेकिन वत्सनरेशकी घोषणामें ऐसा कुछ नहीं है।

'पूरा नवीन संवत्सर वत्सराज्य विद्वत्सत्कार वर्षके रूपमें मनायेगा। आप अपनी सुविधानुसार पधारें। जबतक आप रहना चाहेंगे, हम सेवा करके अपनेको कृतार्थ मानेंगे। हमारी देशके समस्त विद्वान्, तपस्वी, विप्रवर्गसे अत्यन्त विनम्र प्रार्थना है कि वे इस संवत्सरमें पधारकर कुछ काल हमें अपने सत्कारका सौभाग्य प्रदान करनेकी कृपा अवश्य करें।' घोषणा तो यही है। इसमें कहीं किसी प्रयोजनका संकेत नहीं। कोई एक निश्चित अवधिमें सब लोग जब एकत्र नहीं होते हैं तो यज्ञ, सत्र अथवा परिषद्के अकस्मात् आयोजनकी भी सम्भावना नहीं रह जाती।

'कैसा है यह विद्वत्सत्कारका समारम्भ ?' यह प्रश्न सभी विद्वानोंके मनमें उठना था। प्रश्न उठा तो कुतूहल जागा और उस कुतूहलने प्रेरणा दी यात्रा करनेकी। वत्स-नरेशने विद्वानोंकी यात्राके लिये यथासम्भव सब सुविधाएँ मार्गमें कर दी थीं। सभी आर्य नरेशोंसे उन्होंने प्रार्थना की थी विद्वानोंकी यात्रामें सुविधा देनेकी। यह प्रार्थना न भी की गयी होती—ऐसा भाग्यहीन हिंदू नरपति कौन होगा जो विद्वान् ब्राह्मणके राज्यमें आनेपर उसकी सेवाका सौभाग्य छोड़ दे।

'आचार्य अनन्तशंकर भगवती वीणापाणिके वरद पुत्र हैं।' अनेक स्थानोंपर विद्वानोंने वत्सराज्यकी इस आह्वान-घोषणापर विचार करनेके लिये स्थानीय गोष्ठियाँ संयोजित कर लीं। उन गोष्ठियोंमें प्रायः एक-जैसी बातें कही गयीं—वे क्या चाहते हैं, कल्पना कर लेना सरल नहीं है; किंतु इस

प्रकार उनके सत्संगका सुअवसर उपलब्ध हुआ, यह हम सबका सौभाग्य !'

'आचार्य वृद्ध हो गये हैं। उनके कुलमें और कोई तो है नहीं।' अनेक स्थानोंमें यह अनुमान भी किया गया—'उन्हें अपना उत्तराधिकारी भी तो राज्यको देना है। अब वे इस विषयपर विचार करनेकी अवस्था प्राप्त कर चुके हैं। तपस्वी, विद्वान् ब्राह्मणोंमेंसे ही तो उन्हें अपना अधिकारी चुनना है।'

प्रायः विद्वन्मण्डली ही आयी वत्सराज्यमें। एक स्थानके विद्वानोंने एक साथ यात्रा करनेमें सुविधा देखी। मार्गमें पड़नेवाले स्थानोंके विद्वान् ब्राह्मण यदि पहले प्रस्थान नहीं कर गये थे तो वे साथ हो गये। वत्सराज्यमें एकाकी अतिथि कम ही पहुँचे थे।

आचार्यके आह्वानका प्रयोजन प्रायः लोगोंने अनुमान कर लिया था, इससे आगन्तुकोंकी संख्या बढ़ गयी थी; किंतु इससे आचार्यने कोई असुविधा अनुभव नहीं की। वे तो केवल इससे बचना चाहते थे कि आशा देकर प्रतिस्पर्धाके भावसे आये ब्राह्मणोंको निराश लौटानेका निष्ठुर कार्य न करना पड़े।

× × × ×

राज्योद्यान सत्कार-शिविर बन गया था। नगरके बाहर रम्य स्थलोंपर सुन्दर आवास बना दिये गये थे तृण-पर्णादिसे। आगत-अतिथि उन आवासोंमें सम्पूर्ण सुविधा प्राप्त करके भी स्वच्छन्दतापूर्वक स्वरुचिके अनुसार व्यवहार करते रहें, ऐसा प्रबन्ध अत्यन्त सावधानीसे किया गया था। आचार्य स्वयं राज्योद्यानमें आ बसे थे और विद्वानोंको उनके समीप आनेमें कोई रुकावट नहीं थी। राज्योद्यानमें ही वस्त्र, धेनु, धन आदि देकर स्वदेश लौटनेके इच्छुक विद्वानोंका सत्कार करनेकी व्यवस्था थी।

वत्सराज्यकी राजधानी उत्सव-अनुष्ठानमयी हो उठी। अर्चा, तप, जप, यज्ञ, कीर्तन, वेदपाठ, शास्त्रचर्चा—विद्वान् ब्राह्मणोंके यहाँ तो यही होना था। जल, पुष्प, दर्भ, समित्, फल तथा यज्ञ एवं अर्चनकी सामग्रियाँ सबके लिये अत्यन्त सुलभ कर रक्खी थीं नरेशने। नागरिक जनोंको लगा, उनके समस्त पुण्य साक्षात् फलोन्मुख हो उठे हैं इस समय।

विद्वद्वर्ग आचार्यके समीप उपस्थित होता था। परस्पर भी उनकी गोष्ठियाँ होती थीं। इन दिनों केवल आचार्यके अपने अन्तेवासी ब्रह्मचारी परस्पर मिल नहीं पाते थे। आचार्यने उनमेंसे प्रत्येकको आगतोंके सेवा-सत्कारमें नियुक्त कर दिया था और इस पुनीत पर्वपर इतना उत्तम कार्य प्राप्तकर वे भी उत्साहपूर्वक लगे थे।

'बड़ा सात्त्विक समारोह ! अत्यन्त सरल सत्संगका सुअवसर ! वत्स-नरेशकी श्रद्धा धन्य है। श्लाघ्य है उनकी निष्काम श्रद्धा, विद्वानोंने आचार्यके आयोजनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। जिनको जब जानेकी आवश्यकता प्रतीत हुई, समुचित सत्कार एवं दानसे सम्मानित करके लौटनेकी पूरी सुविधा नरेशने नम्रता तथा कृतज्ञता प्रकट करते हुए प्रदान की। किसीको संकेत भी नहीं प्राप्त हुआ कि इस आयोजनका कोई प्रयोजन भी था। अपने अनुमान विद्वानोंको अकारण प्रतीत हुए।

वेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड, न्याय, सांख्य, वेदान्त, व्याकरण, साहित्य आदिके प्रकाण्ड पण्डित पधारे थे। अद्भुत प्रतिभाशाली, अकल्पनीय अनुष्ठानधनी, स्वभावसिद्ध तापस तथा योगसिद्ध साधक भी आये थे। विद्वानोंकी मण्डलियाँ आती रहीं और विदा होती रहीं।

'देव !' नरेशको अपने आचार्यमें अगाध श्रद्धा थी। वे केवल आज्ञाका अनुगमन कर रहे थे—'अकथनीय पाण्डित्य पाया है इन्होंने।' नरेश किसीकी विद्यासे प्रभावित हुए आते तो प्रार्थना कर लेते थे।

'राजन् ! किसने क्या पढ़ा है, क्या जानता है, इसका अधिक मूल्य नहीं है।' आचार्य तटस्थ स्वरमें कह देते—'वह स्वयं क्या है, महत्त्वकी बात यह है।'

'लोकपूजित तपोधन पधारे आज !' नरेश समुत्सुक सूचना देते।

'काय-क्लेश केवल प्रकृतिके राज्यमें पुरस्कार पाता है।' आचार्य अद्भुत हैं। उनपर जैसे कोई सूचना प्रभाव ही नहीं डालती। वे व्याख्या करने लगते हैं—'जनार्दनकी संतुष्टि भिन्न वस्तु है और जो उसका सम्पादन न कर सके, जनताके मार्ग-दर्शनका दायित्व उठा लेनेकी शक्ति उसमें नहीं हो सकती।'

'साधनाने जिन्हें सिद्धि-समुदायका स्वामी बना दिया है, ऐसे महापुरुषकी सेवाका सौभाग्य मिला मुझे आज।' नरपतिका हर्ष अनुचित नहीं था।

'सिद्धि साधनाकी सफलताका नहीं, उसके बाधित हो जानेकी परिचायिका है।' आचार्य उपदेश करने लग जाते हैं—'जननायकको उससे सावधान रहना चाहिये; क्योंकि वह

सामान्य नियमोंका उल्लङ्घन करके भी न्यायालयकी परिधिमें नहीं आया करता। कायिक आसक्ति या यश-इच्छाने ही उसे सिद्धिके स्वीकार करनेको विवश किया है। कामना वहाँ निर्बीज नहीं हुई। अत्यन्त उर्वर खाद है सिद्धि इस बीजके लिये। अतः वह बीज कैसा कितना बड़ा वृक्ष बनेगा, कहा नहीं जा सकता। उससे असावधान रहोगे तो अपना अहित कर ले सकते हो श्रद्धाके आवेशमें।'

× × ×

'देव! आज अन्तिम विद्वन्मण्डल भी विदा हो गया।' नरेशके स्वरमें अत्यन्त व्यथा थी। वर्ष समाप्त हो गया। आगत विद्वान् जा चुके। उनका सत्सङ्ग, उनकी सेवाका महत्पुण्य—यह सब तो ठीक, किंतु उनका इस आयोजनका उद्देश्य जब आज भी अपूर्ण है, अब वह कब कैसे पूर्ण होगा!

'व्यथित होनेकी आवश्यकता नहीं है राजन्! यह वसुन्धरा कभी वन्ध्या नहीं होती।' आचार्यने आश्वस्त करते हुए कहा—'अपने इस सम्पूर्ण देशका नाम सृष्टिकर्ताने अजनाभवर्ष अकारण नहीं रक्खा है। भारतवर्ष इसका नाम तो भगवान् ऋषभदेवके पुत्र भरतके नामपर बहुत पीछे पड़ा। व्यष्टिमें—अपने देहमें समस्त उद्भावनाओंका केन्द्र है नाभिचक्र और समष्टिमें सृष्टिकर्ताके सर्वतोमुखी ज्ञानका उद्भावक यह अजनाभवर्ष। लेकिन अन्वेषण अनिवार्य होता है अतिशय मूल्यवान् रत्नकी प्राप्तिके लिये। अधिकारीका अन्वेषण अपने स्थानपर बैठे-बैठे कर लेनेकी आशा करना मेरे लिये भी उचित नहीं था। यात्रा करूँगा मैं तुम्हारे साथ।'

बहुत कम लोगोंको साथ ले जाना था। अन्वेषण-यात्रा भी इसे कहना कठिन था। आचार्यने उस आदेश देनेवाली रात्रिको शयन नहीं किया था। वे पूरी रात्रि ध्यानस्थ रहे थे और प्रातः जब यात्राके लिये प्रस्तुत होकर नरेश पधारे, आचार्य नित्यकर्म सम्पूर्ण कर चुके थे। रथपर बैठते ही उन्होंने वत्सराज्यके ही एक सीमास्थित ग्राममें चलनेका आदेश दे दिया।

'मेरा अहोभाग्य!' एक साधारण झोंपड़ीके सम्मुख जब ये रथ आकर खड़े हुए, ग्रामके प्रायः सब नर-नारी एकत्र हो गये। उस झोंपड़ीका स्वामी तो हर्षसे उन्मत्तप्राय हो उठा—'मुझ कंगालके यहाँ आज श्रीहरि स्वयं पधारे।'

नरेश कहीं किसी स्थानपर आते, कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। अपनी प्रजाका निरीक्षण करने नरेशको समय-समयपर आना ही चाहिये; किंतु आचार्य पधारें—सम्पूर्ण ग्रामजनोंको लगता था कि आज उनके यहाँ श्रीवैकुण्ठनाथ ही आ गये हैं।

'आज याचक होकर तुम्हारे यहाँ वत्सनरेश पधारे हैं देवता!' आचार्यने देखा कि वह झोंपड़ीका स्वामी कृशकाय गौरवर्ण गृहस्थ तो नरेशकी ओर ध्यान ही नहीं देता है। तो स्वयं बोले—'मैं तो नरेशकी प्रार्थनाका अनुमोदन करने आ गया हूँ।'

'राजन्! क्या सेवा करे यह निर्धन ब्राह्मण आपकी?' उस अत्यन्त सरल ग्रामीणने अब नरेशकी ओर देखा। अभीतक तो वह आचार्यकी वन्दना-अर्चनामें यह भी भूल गया था कि उसके यहाँ आचार्यके साथ कोई और भी आये हैं।

'राजन्! सदाचारके सम्यक् पालनमें अभयदेव शर्माकी समता करने योग्य मैं किसीको नहीं पाता।' आचार्य गम्भीर स्वरमें कह रहे थे—'प्रबल प्रलोभन इन्हें विचलित नहीं कर सके, यह आप भी जानते हैं। प्रकृतिके प्रकोप तथा शरीरका असहयोग भी इन्हें अस्थिर नहीं कर पाता। सदाचार धर्मका दृढ़मूल है और जहाँ धर्म सम्यक् पूर्ण है, जनार्दन स्वतः सुप्रसन्न हैं। अभयदेवने अपने सदाचार तथा दीनजनोंकी सेवासे उस सर्वेशको संतुष्ट किया है। शास्त्रका मर्म ऐसे सत्पात्रमें अप्रकाशित नहीं रहता। पुस्तकीय पाण्डित्यकी अपेक्षा यहाँ नहीं होती। आप अपने भावी राज्यगुरुकी चरण-वन्दना करें।'

'आज आप अपने देशको, अपने नरेशको और इस वृद्ध अनन्तशंकरको निराश नहीं कर सकते।' आचार्यने उस ब्राह्मणको बोलने ही नहीं दिया—'यह दायित्व आप सम्हाल सकते हैं ऐसी आस्था मुझमें है और आप जानते ही हैं कि अनन्तशंकर अपना आग्रह सरलतासे छोड़ा नहीं करता है। आप आज ही राजधानी चलना स्वीकार करेंगे तो यह बूढ़ा अतिथि आपके यहाँ आहार ग्रहण करेगा।'

अभयदेव शर्माके लिये यह प्रार्थना स्वीकार करनेके अतिरिक्त मार्ग भी क्या रहा था।

आधुनिकता—सार और असार

(लेखिका—श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित)

[आधुनिकतामें मदहोश हम भारतीयोंको श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडितके इस विषयपर प्रकाशित विचार शायद उसी तरह निराश करें और हम श्रीमती पंडितको अजनतांत्रिक भी कहें जैसे कि उन्हें १९५४के जापानी प्रवासमें उनके भाषणको सुननेको आयी एक जापानी युवतीने कहा था। फिर भी जब श्रीमती पंडितने अपनी 'आजका यह भारत' शीर्षकसे प्रकाशित हो रही लेखमालामें इस विषयपर एक स्वतन्त्र लेखद्वारा हमारा ध्यान आकर्षित करना उचित एवं उपयोगी समझा है तो हम उसे 'नवभारत टाइम्स' से साभार उद्धृत करते हुए हमारे पाठकोंको इस समस्यापर दीर्घ दृष्टिसे विचार करनेकी प्रार्थना करते हैं। भारतीय संस्कृतिको राहु तेजीसे ग्रसता जा रहा है। जिन तत्त्वोंने भारतीयोंको चिरजीवित रक्खा, परंतु बेबीलोनी, ईरानी, मिस्री, युनानी आदि संस्कृतियोंके साथ ही यहाँ लोगोंको इतिहासके पृष्ठों मात्रमें रहने देकर विलीन कर दिया। उनकी रक्षा करना आवश्यक है तो हमें सजग होना ही होगा। आज हम भारतीय चिन्तन-हीन होते जा रहे हैं। यही हमारी इस अधोगतिका प्रधान कारण है। हमारी चिन्तनाको प्रेरणा मिले, यही कामना है।]

१९५४ में मैं जापानमें थी और वहाँ मैंने सभी प्रकारकी अनेक सभाओंमें भाषण किये। वह बड़ा ही दुःखद समय था। जापानके लोग अपनेको युद्धके अभिशापोंसे मुक्त करनेमें लगे हुए थे और अमरीकी जीवनपद्धति एवं विचारधारासे एकाकार करनेका प्रयत्न कर रहे थे।

महिलाओंकी एक सभामें प्रश्नकालके दौरानमें मुझसे सबसे पहले एक लड़कीने प्रश्न पूछा। वह बोली, 'आपसे मैं बड़ी निराश हुई, आप अजनतांत्रिक हैं।' उसकी बातसे मैं आश्चर्यमें पड़ गयी और उससे मैंने पूछा कि 'आपके प्रश्नका आशय स्पष्ट कीजिये।' वह लड़की कहने लगी, 'आप भारतका परम्परागत परिधान पहने हुए हैं, अतः आपके विचार आधुनिक कैसे हो सकते हैं?' इस नवयुवतीने एक विशेष प्रकारके परिधानको आधुनिकताका स्वरूप मान लिया था और उसके मनमें 'आधुनिक' होनेका मतलब था 'जनतांत्रिक' होना। मैंने उसे यह समझानेकी चेष्टा की कि आधुनिकता तो वास्तवमें मस्तिष्कका रुझानविशेष है, पर वह यह बात समझनेमें असमर्थ रही।

शब्दकोशके अनुसार 'आधुनिक' शब्दका अर्थ है 'वर्तमानका'। अतः जो 'आधुनिक' है, यह जरूरी है कि उसमें समय-समयपर परिवर्तन होते रहें। अपने देशमें हम इस शब्दका यह अर्थ लागू करनेके विरुद्ध रहे हैं। निकट भूतमें ही हमारा देश विदेशी शक्तिके अधीन था। शायद यह अवश्यम्भावी ही था कि प्रभु-देशकी जीवन-पद्धति तथा रीति-प्रथाओंकी हमारे यहाँ प्रशंसा की जाती और हमारे यहाँ जिन लोगोंने इन्हें अपनाया, वे अपनेको आधुनिक कहते।

अंग्रेज और हम

इतनेपर भी कटु सत्य यह है कि हममेंसे अधिकांश व्यक्ति अंग्रेजोंकी तुलनामें अधकचरे हैं और उनकी भाषा और परिधान तथा जीवन-पद्धतिकी हम सतही नकल ही कर पाये हैं। हमारी अनुवृत्तिमें कोई गहराई नहीं है; क्योंकि उनके वास्तविक स्वभावको हम समझ ही नहीं पाये। पाश्चात्य तौर-तरीकोंकी छायामात्रके लिये हमने अपने सनातन एवं ठोस जीवन-मूल्योंको मिटा दिया और इस प्रकार हम घाटेमें ही रहे। हमारे यहाँ जीवनके जो उदात्त और महान् गुण थे, व्यवहारमें न लानेके कारण, हम उन्हें खो बैठे हैं। उनके स्थानपर जो नये तौर-तरीके अपनाये गये थे, वे नये संसारके प्रतीक हो सकते हैं परंतु यह निश्चित है कि वे हमारे लिये उपयुक्त नहीं हैं।

अभिवादन और शैलियाँ

उदाहरणके तौरपर अभिवादन करनेकी भारतीय पद्धतियोंको ही लीजिये। 'नमस्कार' बहुत ही प्यारी और शालीन पद्धति है और जब उचित ढंगसे 'आदाब' किया जाय तो क्या इससे अधिक सुसंस्कृत तरीका कोई और हो सकता है? इनके स्थानपर आजकल 'हैलो' तथा 'ही देयर' (Hi there)' हैं, जो बहुत ही भद्दे और कर्कश हैं। अमरीकामें भी अभिवादनकी अधिक शालीन और नम्र-पद्धतियोंकी खोज की जा रही है।

इंगलैंडमें मैं जब उच्चायुक्त थी तो उस समय समस्या

यह थी कि रानी तथा शाहीपरिवारके अन्य सदस्योंका अभिवादन किस पद्धतिसे किया जाय। वास्तवमें यह 'नमस्कार'की पद्धति ही होनी चाहिये थी। यद्यपि कुछ 'आधुनिक' भारतीय महिलाएँ अभिवादनका पाश्चात्य तरीका ही रखना चाहती थीं। परंतु मैं इस बारेमें दृढ़ बनी रही और शनैः-शनैः 'नमस्कार' न केवल स्वीकार ही कर लिया गया, अपितु जिन्हें यह पद्धति प्यारी लगी वे इस अभिवादन-का उत्तर भी 'नमस्कार'में देने लगे। रानीद्वारा कूट-नीतिक-प्रतिनिधियोंको दिये गये वार्षिक स्वागत-समारोहोंमें यह देखने योग्य था कि सभी एशियाई देशोंने (जिसमें उस समय इण्डोनेशिया भी शामिल था) 'नमस्कार' और पाकिस्तानने 'आदाब'का प्रयोग किया।

मुझे एक कूटनीतिक (Diplomat) की पत्नीकी बातका स्मरण आता है जिसको पोप (Pope) से मिलाया जानेवाला था। वे अभिवादनकी पाश्चात्य प्रणालीको ही अधिक उपयुक्त मानती थीं, परंतु उनसे कहा गया था कि अभिवादनमें वे 'नमस्कार' का ही उपयोग करें। पाश्चात्य अभिवादन-प्रणालीमें वे इतनी ढल चुकी थीं कि 'नमस्कार' करनेके लिये वे अपनेको योग्य न समझती थीं। पोपके अभिवादनमें उन्होंने हाथ तो जोड़े, पर उनके मुँहसे निकला पाश्चात्य अभिवादन ही—होली फादर (Holy Father)। पोपने उस समय अपने मनमें जो भी सोचा होगा, वह निश्चय ही बड़ा मजेदार रहा होगा।

रूसका अनुभव

अभिवादनकी प्रणालीके बारेमें अनिश्चयात्मिकताकी एक और घटना मुझे याद है। मास्कोमें १९४७ में राष्ट्रपति सेवरनिकको मैंने जब अपना परिचय-पत्र प्रस्तुत किया, उस समय हम सभी इस बातके लिये व्यग्र थे कि सभी कुछ भारतीय पद्धतिसे होना चाहिये। परिचय-पत्र हिंदी और रूसीमें था; हिंदी अनुवाद श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डनने तैयार किया था। मेरा छोटा-सा भाषण भी हिंदीमें था। परिचयपत्र प्रस्तुत करनेके उपरान्त मुझे अपने कार्यालयके दलका परिचय राष्ट्रपतिसे कराना था। सबसे पहले मैंने अपने सहायक मन्त्री (मिनिस्टर) का परिचय कराया। अपने दूतावासमें पहले ही हमने इस समारोहका पूर्वाभ्यास कर लिया था। परंतु मन्त्री महोदय घबरा गये और उन्हें यह नहीं सूझा कि करना क्या है? उन्होंने अर्द्ध-नमस्कारसे शुरू किया, फिर आदाब पर आ गये और इसका समापन उन्होंने हाथ मिलाकर किया। इससे समारोहकी गरिमा फीकी पड़ गयी और हम सब बड़े शिथिल हो गये।

नकली अंग्रेज

भारतमें इस प्रकारके तथाकथित 'आधुनिक'की नकल करनेकी कोशिश की जा रही है। किसी व्यक्ति या प्रथाकी अंधी नकलका परिणाम बुरा ही होगा।

जब हम किसी चीजको छोड़ते हैं तो उसके अभावकी पूर्ति हमें ऐसी चीजसे करनी चाहिये कि जो यदि छोड़ी गयी चीजसे अच्छी न हो तो कम-से-कम उसके बराबर अच्छी तो हो ही। पाश्चात्य जीवनके बारेमें हमारे विचारोंका मुख्य आधार सिनेमा और घटिया किस्मका साहित्य ही है। यही कारण है कि हम वास्तविक चीजको खो बैठते हैं। कुछ वर्ष पूर्व यह देखकर बड़ा दुःख होता था कि किसी अंग्रेज मित्रका स्वागत करते हुए भारतीय अपनेको नकली अंग्रेज बनानेकी जी-तोड़ कोशिश करते थे। इस प्रकारकी चेष्टासे विदेशी प्रभावित नहीं होते थे। जिस चीजको हम समझते हैं, यदि हम उसीको अच्छी प्रकार निभावें, तो वह अधिक शालीन और मनोरम लगेगा।

लंदन और वाशिंगटनमें मैंने अतिथियोंको भोजन अक्सर थालीमें परोसा है। इसके साथ काँटे और छुरियाँ भी दी जाती थीं, परंतु अतिथि भोजन हाथसे ही करनेकी कोशिश करते थे और इस अनुभवका मजा लेते थे। हालहीमें जब एडिनबरोके ड्यूक भारतसे गुजर रहे थे, उन्होंने मुझे बताया कि अपनी यात्रामें सबसे अधिक आनन्द उन्हें थाई देशमें आया। वहाँ उनके साथ एक पाश्चात्यकी भाँति व्यवहार नहीं किया गया, अपितु वहाँके राजा-रानीके जीवनमें भी उन्होंने भाग लिया तथा अपने ही हाथसे भोजन करनेका आनन्द लिया। इसके विपरीत भारतमें उन्हें पुडिंग तथा लैम्ब-चाप्स (Lamb-Chops) दिये गये। स्पष्ट है कि वे इससे हतोत्साहित हो गये।

भारतमें आजकल कई लोग ऐसे हैं जो थालीमें परोसे गये भारतीय व्यञ्जनोंको खानेके लिये पाश्चात्य उपकरणों—जैसे काँटा-छुरीका उपयोग करते हैं। यह ढंग बिल्कुल गलत है; क्योंकि इससे एक तो भोजनका पूरा आनन्द नहीं मिलता, दूसरे चाकूके प्रयोगसे थालियोंपर धारियाँ पड़ जाती हैं। वास्तवमें यह भी अंग्रेजी शासन-कालका एक अवशेष है जब

कि हाथसे भोजन करना असभ्यता माना जाता था। एक मित्र थालीके साथ चापस्टिकका प्रयोग करते हैं, परंतु काँटे-छुरीकी तुलनामें यह कम अटपटा लगता है।

आधुनिक बननेकी होड़

हमारी पोशाकमें भी परिवर्तन हो रहे हैं। एक लड़कीके लिये अपनी दादीकी पसंदकी साड़ी पहनना अब सम्भव नहीं है; क्योंकि रुचियोंमें परिवर्तन हो गया है। विभिन्न अवसरों-के लिये हमारे पास अलग-अलग तरहके कपड़े नहीं हैं तथा महिलाओंके लिये जीवन जब इतना अधिक व्यापक एवं सक्रिय हो गया है कि एक साड़ी सभी जगह उपयोगके लिये पर्याप्त नहीं है। यह सही है कि लड़कियोंको वही पहनाना चाहिये कि जो अधिक सुविधाजनक हो तथा खेल-कूद या लंबे भ्रमणके लिये सलवार, कमीज या स्लैक्स अथवा शर्ट्स अधिक उपयोगी है। परंतु सलवार-कमीज और साड़ी दोनों ही बड़े आश्चर्यजनक रूप धारण करती जा रही हैं। यदि यही हाल रहा तो पोशाकके रूपमें ये समाप्त ही हो जायँगी। यदि उच्च वर्ग इस प्रक्रियाको जारी रहने देगा तो यह बड़ा दुःखद होगा; क्योंकि किसी भी राष्ट्रके विकासके लिये परि-धान और भाषा आधारभूत चीजें हैं। इनमें कुछ सीमातक परिवर्तन किया जा सकता है, परंतु इनमेंसे किसी भी एकके महत्त्वसे इन्कार करना दूसरेकी भी जड़ काट देना होगा।

आधुनिक बननेका एक दूसरा रूप है अपने घरमें काँसे या पीतलकी मूर्तियाँ भर लेनेकी होड़। उच्चकोटिकी कला-कृतियोंको खरीदनेके लिये आवश्यक धन तथा अभिरुचिसे बहुत ही कम लोग सम्पन्न होते हैं। परंतु अधिकतर यही सोचते हैं कि नटराज या पार्वतीकी एक मूर्ति तो होनी ही चाहिये; क्योंकि यह प्रतिष्ठाका प्रतीक माने जाने लगी है। इस प्रकारकी होड़के कारण घर सुन्दर लगनेकी जगह भोंडा लगने लगता है।

भारतपर लगभग २०० वर्षतक अंग्रेजोंका आधिपत्य रहा। अतः पश्चिमकी नकल करना कोई अस्वाभाविक नहीं है। परंतु हमारे लिये घातक बात यही रही कि हमने पश्चिम-की केवल कम वाञ्छनीय चीजोंकी ही नकल की है। बातचीतकी एक शैली, कपड़े पहननेका एक ढंग-विशेष ही हमारे लिये सभ्यताका एक चिह्न बन गया। हम इस तथ्यको पूरी तरहसे भूल गये कि जिन गुणोंके कारण अंग्रेज सफल साम्राज्य-निर्माता बने, उनका हममें नितान्त अभाव है।

जीवन और उसका मूल्याङ्कन

हमें कोई चीज न तो मात्र इस आधारपर ठुकरा देनी चाहिये कि वह पाश्चात्य है और न किसीसे इसीलिये चिपके रहना चाहिये कि वह परम्परागत है। रीति-रिवाजोंका निर्माण मनुष्योंद्वारा ही होता है और इन्हींसे परम्पराएँ प्रस्फुटित होती हैं। जब वे पुराने या शिथिल पड़ जाते हैं तो उन्हें हटा दिया जाना चाहिये और कोई अच्छी चीज उनके स्थानपर आनी चाहिये। अब वह समय आ गया कि हम अपने दैनिक जीवनसे सम्बन्धित चीजोंका—भाषा, पोशाक, भोजन तथा जीवन-पद्धतिका व्यावहारिक दृष्टिसे मूल्याङ्कन करें।

भाषाका प्रश्न बड़ा ही विस्फोटक है और इसपर यहाँ विचार करना ठीक भी नहीं है। परंतु मैं एक बातका उल्लेख करूँगी कि जो अधिकाधिक असत्य होती जा रही है। वह बात यह है कि हमारे बच्चे सभी समय अपनी मातृ-भाषाकी जगह अंग्रेजी बोलते हैं। कुछ तो इसलिये ऐसा करते हैं कि उन्हें अपनी मातृभाषा अच्छी तरह नहीं आती और दूसरे इसलिये कि उनपर घरका प्रभाव अधिक नहीं है। कारण कुछ भी हो, पर सत्य यह है कि अधिक-से-अधिक बच्चे अंग्रेजी बोलते और अंग्रेजीमें सोचते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी भाषाओंकी हानि हो रही है। आज जब कि हम एक राष्ट्रभाषाके लिये चिल्ला रहे हैं, यह बड़ा ही विस्मयकारक है।

अंग्रेजीदाँ बच्चे

बचपनमें मेरे घरमें अंग्रेजी भाषा और साहित्यको भारी महत्त्व दिया जाता था; परंतु उस समय हम बच्चे अपने पारिवारिक जीवनमें हिंदी या उर्दूके अलावा किसी और भाषामें वार्ता करनेकी बात सोच भी नहीं सकते थे। उस समय कोई समस्या ही नहीं थी कि अंग्रेजी ऐसी विदेशी भाषा थी जिसे भली प्रकार सीखना था, दूसरी भाषा हमारी अपनी थी। आज जब कि अंग्रेज भारतसे बिदा हो चुके हैं, अंग्रेजी भाषा अपने नये विस्मयकारक भारतीय चोलेको धारण किये हुए प्रतिष्ठाकी प्रतीक बनी हुई कई लोगोंकी जबानपर चढ़ी हुई है।

विदेशी सेवाके सदस्योंके बच्चोंके लिये, जो या तो विदेशमें उत्पन्न होते हैं, या अपना बाल्यकाल विभिन्न विदेशी भाषाओंकी छायामें बिताते हैं, भाषा वास्तवमें एक विकट समस्या है। स्वदेश लौटनेपर वे अपनेको अजनबी पाते हैं।

कई वर्षोंसे मैं इसके लिये बड़ी इच्छुक हूँ कि विदेशोंकी जिन राजधानियोंमें भारतीय बच्चे पर्याप्त संख्यामें हैं, वहाँ उनके लिये स्कूल खोले जायँ ताकि वे अपनी मातृभूमिके बारेमें ज्ञान प्राप्त कर सकें। अमरीकी और रूसी इसी पद्धतिको अपनाते हैं और यह उनके बालकोंके लिये बड़ी लाभदायक है।

मेरी रायमें इन सभी तथा इस प्रकारकी सारी समस्याओंका एकमात्र निदान है—शिक्षा। यह शिक्षा व्यापक दृष्टिकोणके लिये हो तथा भविष्यको ध्यानमें रक्खे। इससे बच्चोंमें यह गुण आना चाहिये कि भूसेको अनाजसे किस प्रकार अलग किया जा सकता है जो विगतमें निहित पोषक तत्त्वोंसे युवकोंका पोषण करें ताकि वे भविष्यकी कठोर यात्राके लिये तैयार हो सकें, वह शिक्षा जो केवल सर्वोत्तम हो उसे ही ग्रहण करायें। इस शिक्षाको देनेके लिये आवश्यक साधन तथा उपाय जुटाये जाने चाहिये। अब हम महाभारतकी ओर नहीं लौट सकते। हमें बढ़ना मङ्गल नक्षत्रकी—अन्तरिक्ष युगकी—ओर ही है। हमारे नवयुवकोंको! इस कष्टसाध्य यात्राके लिये साधनों और पाथेयसे सम्पन्न होना चाहिये।'—'नवभारत टाइम्स' बम्बई दि० २३–४–६५ से साभार उद्धृत। प्रेषक—श्रीकस्तूरमल बाँठिया

बहन

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

मेरा देश, देशकी मैं, देश मेरा जीव-प्राण,
मेरा सम्मान मेरे देशकी बड़ाईमें।
भीषण भयंकर प्रसंगमें भी, भूलकर भी,
भूलूँगी न देश-हित रामकी दुहाई मैं॥

मोरसली वृक्षके नवपल्लवोंसे छनकर भगवान् भास्करकी अरुणोदय वेलाकी रक्त रश्मियाँ ताराके इकमंजिले भवनमें झाँकने लगी थीं कि उसका डेढ़ वर्षका बालक रो उठा। ताराने चक्कीका पीसना बंद करके झट उसे गोदमें उठा लिया। अपने घुटनेको हिला-हिलाकर उसे चुप करनेका प्रयत्न करने लगी तो भी वह रोता रहा। माँ ताराने फिर उसे छातीसे लगाया, पुचकारा, दुलराया और अपने आँचलके पल्लेसे ढककर उसे स्तनोंका दूध पिलाने लगी।

उसने देखा, बालक अब हँस रहा है खूब खिलखिलाकर। उसके समग्र मुखमण्डलको निहारकर ताराको अपने पतिके मुखारविन्दकी स्मृति हो आयी। 'ऐसा ही उनका हँसमुख चेहरा है, जिसपर वीरताकी आभा झलकती रहती है।' फिर बालकको चूम लिया। अब दिवाकरकी रक्त रश्मियाँ सुनहरा रूप धारण करके बाहर चारों ओर फैल गयी थीं। पड़ोसके बाजारमें चहलपहल शुरू हो गयी थी। पक्षियोंका कलरव शान्त हो गया था और वे पेट-पूजाके लिये इधर-उधर उड़ गये थे।

इसी समय ताराकी सहेली जमनाने एकदम किंवाड़ खोलकर कमरेमें प्रवेश किया। हँसकर बोली—'आज तेरे जीजाजी सेनामें भरती होनेकी झूठमूठ तैयारी मुझे चकमा देनेके लिये कर रहे थे। मैं समझ गयी। मैंने उन्हें ऐसा छकाया कि हँस पड़े और जान लिया कि मैं रहस्य जान गयी हूँ।'

'बहन! ऐसे तो कई मजाक घरमें हुआ ही करते हैं; किंतु तुम जानती हो कि हमारा देश आज संकटकी घड़ियोंमें गुजर रहा है। चीन और पाकिस्तान मिलकर हमारे देशको जबरदस्ती हड़पकर हमें गुलाम बनाना चाहते हैं। महापुरुष अब्राहिम लिंकनने कहा है कि गुलामीके समान दूसरा पाप नहीं है। इसीसे हमारे अनेक देशभक्तोंने बलिवेदीपर चढ़कर आजादी

हासिल की है। इस आजादीकी रक्षा करना हमारा परम धर्म है। मैंने तो अपने प्राणप्यारे पतिदेवके उन्नत ललाटपर सहर्ष तिलक-चावल लगा, मङ्गलसूचक रुपया-श्रीफल उनके हाथोंमें रखकर उन्हें सेनामें भर्ती हो युद्धस्थलमें जानेको भेज दिया है। अब वे शत्रु-सेनासे वीरतापूर्वक लोहा लेते हुए देशकी रक्षामें अन्य वीरोंके साथ अपना कर्तव्य निभा रहे होंगे। मुझे यही सोचकर प्रसन्नता होती रहती है।' ताराने फिर कहा—'यदि समय आया, तो मैं भी उनका अनुसरण करनेको तैयार बैठी हूँ। मैं मनसे तो उनके साथ छायाके समान हूँ ही। मुझे देश बड़ा प्यारा है।'

जमनाने कुछ अनमने भावसे कहा—'हाँ बहन! यह तो ठीक है; परंतु पतिके बिना नारीका जीवन ही क्या! देखो, तुम्हीं अकेली रह गयी हो—रक्षक-विहीन। तुम्हारे गुजारेका भी साधन नहीं।'

'ऐं, तूने यह कैसे कहा? अकेली और रक्षक-विहीन बताकर क्या तू मुझे डरपोक समझना चाहती है? तू अपने पतिके साथ सुखी है—यह देखकर मुझे तो आनन्द ही प्राप्त होता है। और मेरे पतिका स्वदेशके रक्षार्थ युद्धस्थलपर जाना भी तेरे लिये खुशीकी बात होनी चाहिये; किंतु तूने तो उल्टी ही बात सुनायी। सुनो जमना! मैं पति और देशकी रक्षाके निमित्त प्रतिदिन नियमसे 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ करती हूँ और निम्नलिखित श्रीकृष्ण-मन्त्रकी रोज दो माला जपती हूँ—

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

'इससे मेरे चित्तमें बड़ी शान्ति रहती है और भगवान्के चरणारविन्दोंमें नित नयी भक्ति, रति और प्रेम बढ़ता ही जा रहा है।

'हमारा देश शान्तिप्रिय देश है। वह संसारके सभी देशोंको शान्तिका पाठ पढ़ा रहा है। कोई जबरदस्ती आक्रमण कर बैठता है, तो पहले उसे शान्ति और भाईचारेकी बातचीतके द्वारा समझाना चाहता है। किंतु जब वह नहीं मानता है, तो हमको भी अपने बल और भगवान्की कृपाका पूरा-पूरा भरोसा है। हम सत्य और न्यायके पथपर हैं। आज पुरुषोंमें ही नहीं, स्त्रियोंमें भी देशप्रेम जाग उठा है। वे पुरुषोंकी बराबरीके साथ कदम-से-कदम मिलाकर देशके रक्षार्थ सेनाके रूपमें कूच करनेको तैयार बैठी हैं। आक्रमण-कारीको यह नहीं समझ लेना चाहिये कि भारतके पुरुष कायर हैं और नारियाँ मोमकी बनी हैं।' ताराने स्थिति स्पष्ट करके सुनायी।

जमना उमङ्गके साथ बोली—'तुम्हारी बातोंसे मेरे रोम-रोममें भी देशभक्तिकी भावना जाग उठी है। आजसे मैं भी 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ और श्रीकृष्ण-मन्त्रका जप करना शुरू किये देती हूँ और पतिदेव-को भी इसके लिये उत्साहित करूँगी। हमारे देशकी करोड़ों नारियाँ ऐसा करने लग जायँगी तो आक्रमण-कारीकी क्या मजाल है जो हमारे भारतकी ओर आँख उठाकर भी देख सके। हमारा इतिहास हम नारियों-के शौर्य-वीर्य और पराक्रमका वर्णन डंकेकी चोट सुना रहा है और भगवद्भक्तिमें तो वे पुरुषोंसे चार कदम आगे ही हैं।'

× × ×

बहुत दिनोंके पश्चात् अध्यापिका सुमित्राजी तारासे मिलने आयीं। तारा और जमनाका वार्तालाप सुनकर बोलीं—'देखो, देशवासियोंमें देशरक्षार्थ कितनी आश्चर्यजनक जागृति हो गयी है। चीनके गत आक्रमणके समय सोनेकी माँगपर लोगोंने कोने-कोनेसे सोना निकालकर सरकारके सामने ढेर कर दिया। यहाँतक कि स्त्रियोंने शरीरके गहनोंके साथ-साथ मङ्गल-सूत्र भी दे डाला। बहन! आज भी वही स्थिति

बनी हुई है। संसारकी गतिविधिसे ही नारी सब सीखती है—यह सुप्रसिद्ध विदेशी विद्वान् रूसोका मत है। स्वामी दयानन्दजीने तो यहाँतक कहा है कि भारतका धर्म पुत्रोंसे नहीं, बल्कि पुत्रियोंकी कृपासे ठहरा हुआ है। यदि भारतकी रमणियाँ अपना धर्म छोड़ देतीं, तो अबतक भारत नष्ट हो गया होता।' इसीलिये बहनो! हमको भी महापुरुषोंके पदचिह्नोंपर चलना चाहिये।* मेरे तो आनन्दकन्द व्रजचन्द्र, नटवर नन्दकिशोर चित्तचोर श्रीकृष्ण आराध्यदेव हैं। जिस समय मैं उनके दिव्य शृङ्गारका ध्यान करती हूँ और मन-ही-मन 'श्रीकृष्णः शरणं मम'का जप करती हूँ, तब मेरे आनन्दका पार नहीं रहता। जिधर देखती हूँ उधर ही चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द दृष्टिगोचर होता है। तब मेरा मनमयूर नाच उठता है। उन्हींकी विश्वपूज्य श्रीगीताजीमें कहा गया है कि 'जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन है, वहींपर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—ऐसा मेरा मत है।'† महामना संजयने इतना कहकर श्रीगीताजीकी समाप्ति करते हुए विश्वको विश्वास दिला दिया है। फिर भला हमें भय किसका है!'

(२)

दोनोंके चले जानेपर ताराका चिन्तन शुरू हो गया। 'सहेली जमनाके मुखसे कैसे निकला कि 'अकेली रह गयी हो—कोई रक्षक नहीं।' इतनेहीमें बालक रो उठा। ताराके विचारोंकी धारा एकदम टूट गयी। बच्चेको उठाकर उसने हृदयसे चिपका लिया—मानो अपने हृदयकी तपनको शान्त करनेका यह एक रामबाण नुस्खा हो।

पुनः उसके मनमें रह-रहकर वही विचार उठने लगे। भले ही मैं पतिके पास न होनेसे अकेली कही जा सकती हूँ; किंतु अपने हौसले, हिम्मत और बहादुरीके हिसाबसे मैं हर्गिज अकेली नहीं हूँ। चाहे कैसी ही विपरीत परिस्थिति हो, अपनी रक्षा मैं आप कर सकती हूँ। भगवती दुर्गाकी शक्ति मुझमें है। पतिदेव कई अस्त्र-शस्त्रोंका चलाना मुझे सिखा गये हैं। मेरे सामने दो आदर्श हैं। एक तो यह कि—

इच्छा होय यदि मुझे गंगा स्नान करनेकी
पतिके पदारविन्द धोय धोय न्हाऊँ मैं॥

दूसरा यह कि—

निरानंद आलस उत्पातके उदय हुए
हरिपद चिन्तनमें चित्तको लगाऊँ मैं॥

सचमुच इन्हींके सहारे मैं सर्वत्र निर्भय रहती हूँ। उस दिन रामसुख छात्रने आवाज कसी थी। मैंने तत्काल उत्तेजित न होकर उसे भाईचारेसे आगेके लिये सावधान किया था; किंतु उसकी हरकत बंद न होनेसे मैंने चप्पलोंद्वारा उसकी पूजा कर दी थी। यह देखकर अन्य छात्र और कई लोग वहाँ एकत्र हो गये थे; किंतु मेरे तेजके सामने किसीको कुछ बोलनेका साहस नहीं हुआ। बेचारा रामसुख लज्जित हो—गिड़गिड़ाता हुआ मेरे पैरोंमें गिरकर हाथ जोड़कर आँखोंमें आँसू भर बार-बार मुझसे क्षमा माँगने लगा था। पहले तो मुझे पूरा विश्वास नहीं हुआ, किंतु जब वह बोला—'आप मेरी धर्मकी बहन हो, भाई समझकर मुझे क्षमा कर दो। अब कभी जीवनपर्यन्त ऐसी हरकत नहीं करूँगा। इस समय मैं अपराधी हूँ, क्षमा कर दो बहन!' तो मुझे भी उसपर दया आ गयी। फिर लज्जावश वह इस नगरको छोड़कर कहीं चला गया है। यदि होता, तो मैं उसे अवश्य ही भाईके समान मानती। मैं नारी

* महाजनो येन गतः स पन्थाः।

† यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
(श्रीमद्भगवद्गीता १८।७८)

हूँ—कोमल और कठोर दोनों हृदय रखती हूँ।' इन विचारोंकी धारा हृदयमें प्रवाहित होते-होते ताराको निद्रा आ गयी।

(३)

वीर रामकृपालका विवाह गत वर्ष ही हुआ था। किंतु देशके आह्वानपर वह पत्नी और दुधमुँहे बच्चेका मोह छोड़कर सेनामें भर्ती हो युद्धस्थलपर चला गया। तबसे आजतक बहुत दिन हो जानेपर भी न तो उसकी कोई खबर आयी, न पत्र आया और न मनीआर्डरके द्वारा रुपये ही आये। तारा बड़ी परेशान है। मिनट-मिनट गिनकर दिन पूरे करती है। डाकियेकी राहमें पलकें बिछाये रहनेपर भी जब वह पड़ोसमें डाक वितरण करके वापस लौट जाता है, तब वह निराश होकर खटियापर जा पड़ती है। आज दिवालीका त्यौहार है। सभी जातियोंके अमीर-गरीब यह त्यौहार मनायेंगे। किंतु तारा? उसके पास तो त्यौहार मनानेका कोई साधन ही नहीं है।

'बेटी! आज पावन ज्योतिके पर्वपर घरमें अँधेरा किये उदास कैसे बैठी हो! तुम्हारे पास यदि साधन न हो तो मुझसे कहला देती। अभी मैं तुम्हारे लिये सब सामान भेजती हूँ। कोई चिन्ता मत करो। हम पड़ोसी तुम्हारे कुटुम्बके समान हैं।' पड़ोसकी एक धर्मशीला वृद्धाने यह कहकर अपने घरसे बहुत-से भोज्य-पदार्थ ताराके पास भेज दिये।

दूसरे दिन आकर वृद्धाने कहा—'मेरा पुत्र जुगल-किशोर नगरके एक अस्पतालमें डाक्टर है। वहाँ उच्च चरित्रकी एक भली नर्सकी आवश्यकता है। काम वह सिखा देगा और तुमको पर्याप्त मासिक वेतन दिलायेगा। जानती हूँ तुम शीलवती हो और शील ही नारीका भूषण है। सेवाका काम करना तो हर हालतमें उत्तम ही है। जुगलको अपना भाई समझो। इस कामको करनेकी स्वीकृति दे दो, ताकि मैं उससे कहूँ।'

'जब पति ही सेवाके कार्यमें गये हैं। तब यहाँ मुझे सेवा-कार्य करनेमें क्या आपत्ति है। सेवाधर्म तो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है।' यह सोचकर ताराने स्वीकृति दे दी।

नियुक्तिके बाद तारा नर्सका काम जल्द सीखकर तन-मनसे रोगियोंकी सेवा करने लगी। उसकी प्रसिद्धिसे ईर्ष्यावश होकर गोपी नर्सने उसके चरित्रपर झूठा कलंक लगा दिया, जिससे ताराकी प्रसिद्धिमें कमी आने लगी। किंतु डाक्टरने बड़ी चतुराईसे सचाईको जान लिया और गोपी नर्सको नौकरीसे अलग कर दिया।

अब पुनः तारा तपे हुए सोनेके समान चमक उठी। लोगोंकी धारणा उत्तम बन जानेके कारण अब उसकी सेवाका काम चौगुना अच्छा माने जाने लगा। घावोंकी मरहम-पट्टीका काम जितनी फुर्ती और दक्षताके साथ वह करती थी, वैसा काम दूसरी नर्सें नहीं कर पाती थीं। किंतु वे ताराके मिष्ट-व्यवहारसे प्रसन्न थीं, इससे कोई द्वेषभाव उनमें उत्पन्न नहीं हो पाता था। ताराके दिन चैनसे गुजर रहे थे। उसके प्यारे पुत्रके लिये शुद्ध दूध और पौष्टिक खाद्यका प्रबन्ध भी अस्पतालकी ओरसे हो जाता था।

(४)

इन सुखोंके दिनोंमें भी तारा अपने पतिकी कुशल भगवान्से नित्य मनाया करती थी। अब तो बहुत दिनोंकी प्रतीक्षाके बाद उसके पतिका कुशल-पत्र आया और मनीआर्डरसे रुपये भी प्राप्त हुए। पत्रको ताराने छातीसे लगाकर चूम लिया। अपने सेवा-कार्यमें अब उसका उत्साह ढाईगुना बढ़ गया; जिससे वह गरीबोंको अपने पाससे सहायता देकर उनकी सेवा करने लगी।

× × ×

एक दिन एक घायल युवकको अस्पतालमें लाया

गया। युवककी हालत गंभीर थी। डा० जुगलकिशोर ताराके कामसे बहुत प्रसन्न थे। इसलिये उन्होंने इस युवककी मरहम-पट्टी एवं अन्य शुश्रूषाका काम ताराको ही सौंपा। तारा बेहद लगनके साथ युवककी सेवामें जुट गयी। मानो परीक्षामें सर्वप्रथम उत्तीर्ण होनेकी तैयारी कर रही हो। सेवाके सिलसिलेमें ही उसने एक दिन देखा कि मानो युवकका चेहरा कुछ जाना-पहचाना-सा लग रहा है। किंतु उसने इस मानसिक भावनापर कुछ ध्यान नहीं दिया और वह अपने कार्यमें दत्तचित्त बनी रही। थोड़ा-थोड़ा आकर्षण उधर होता अवश्य था।

युवकको कुछ आराम मालूम हुआ। उसे भी नर्सका चेहरा जाना-पहचाना भासने लगा। वह साहस बटोर-कर बोला—'बहनजी! आपने मुझे नया जीवन दिया है।' आगे बोला—'मैं सिनेमा देखने गया था। वहाँ टिकिट लेनेकी खिड़कीपर जरा-सी बातसे ऐसा झगड़ा बढ़ा कि कई आदमी मुझपर एकदम टूट पड़े और मुझे इतना मारा कि—घावोंकी संख्या तो आप देख ही रही हो—मैं बेहोश हो गया। यदि मैनेजर फोनद्वारा तत्काल पुलिसको न बुलाते, तो मेरी जान न बच पाती और आप तो मुझे साक्षात् मातृतुल्य दिखायी दे रही हो। समय-असमय मुझे चंगा करनेमें जुटी रहती हो। मैं आजन्म आपका अहसान नहीं भूलूँगा। मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि सिनेमा देखना घोर पाप है। मैं आजसे ही सिनेमा न देखनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।'

दोनों ओरका निर्विकार कथोपकथन आगे बढ़ा। इसी दौरानमें ताराने जान लिया कि यह तो वही रामसुख है, जिसकी बेजा हरकतोंपर मैंने चप्पलोंसे पिटाई की थी और जिसने मुझे धर्मकी बहन बनाकर बार-बार मुझसे क्षमाकी प्रार्थना की थी। बेचारा लज्जाके मारे नगर छोड़कर ही कहीं चला गया था।

रामसुखने भी विनयपूर्वक हाथ जोड़े। उसकी आँखें पुराने अपराधकी स्मृति आ जानेसे नीची हो रही थीं और उनके कोयोंमें अश्रुजल झलक रहा था। कण्ठस्वर रुद्ध था। लज्जासे मस्तक झुका जा रहा था।

तारा मानो क्षमा और धैर्य बँधानेके स्वरमें बोल उठी—'भाई! तुम्हारे सामने बहन खड़ी है। अब क्यों इतने अधीर और लज्जित हो रहे हो। तुम्हारा यह प्रायश्चित्त कम नहीं है। मेरा तो कर्तव्य हो गया है कि जीवनभर तुम्हारे साथ भगिनी-धर्म निभाऊँगी।'

ताराने अपनी चिकित्सासे रामसुखको भला-चंगा कर नर्सका कर्तव्य पूरा किया। उसके बाद जब-जब रामसुखपर छोटी-बड़ी विपत्तियाँ आयीं, तब-तब ताराने उसकी पूरी सहायता की।

कुछ दिनोंके बाद जब ताराका पति रामकृपाल छुट्टीपर घर आया, तो वह इन नवीन बहन-भाईका सारा हाल जानकर आश्चर्यचकित हो गया। उसके मनमें कई प्रकारकी शंकाएँ उत्पन्न हुईं। अतः उसने इसकी पूरी-पूरी जाँच कर लेना उचित समझा, ताकि विश्वास होकर उसका मन पवित्र हो जाय।* उसने कई प्रकारसे इस नये सम्बन्धकी परीक्षा की और कई दिनोंतक परीक्षा करनेमें लगा रहा। किंतु अन्तमें परीक्षामें दोनोंके चरित्र—ऐरावत-जैसे श्वेत, बक-जैसे शुभ्र, दूध-जैसे धवल, चाँदी-जैसे उज्ज्वल, दर्पण-जैसे स्वच्छ, कपूर-जैसे सफेद और निर्मल जलके समान सिद्ध हुए। इस प्रकार दोनोंके चरित्रोंको निर्दोष, निर्विकार, निष्कलंक एवं तप्तस्वर्णके समान समुज्ज्वल देखकर वीर रामकृपालका मन आनन्द-सागरमें हिलोरें लेने लगा। उसने देखा कि आजके युगमें सहोदर बहन-भाई भी विशुद्ध प्रेम निबाहते हुए ममत्वके साथ दायित्व समझकर कोई बिरले ही रह पाते हैं। मुझे रामसुख सद्गुणी साला अनायास ही मिल गया है।

* मनःपूतं समाचरेत्।

उत्तम मनुष्योंका सत्संग प्रभुकी कृपाके बिना नहीं मिलता ।'

फिर तो दोनों पति-पत्नी रामसुखके हर काममें सम्मिलित होकर यथाशक्ति सहायता देकर रामसुखको सुख पहुँचाते और सभी मिलकर ऐसे रहते जैसे सगा परिवार ही हो । इनके इस विशुद्ध प्रेम और सद्भावना-पूर्ण व्यवहारको देखकर सभी लोग आपसमें कहा करते कि भई ! ये तो सहोदर बहन-भाईसे किसी अंशमें भी कम नहीं हैं । इनका उदाहरण हम सबके लिये अनुकरण करने-जैसा है ।

एक दिन जब कि सूर्यका अवसान समीप था, डाकियेने बाहरसे ही जोरकी आवाज लगायी । रामकृपालके बाहर आनेपर डाकियेने उसे एक लंबा लिफाफा दिया । रामकृपालने देखा, उसपर सेनाके बड़े दफ्तरकी मुहर लगी है । देखकर उसका दिल धड़का 'शायद मुझे छुट्टीके पहले ही बुलाया गया है । अथवा मुझे सेवासे ही मुक्त कर दिया है या कौन-सी आपत्ति इस लिफाफेके अंदर होनी चाहिये ।' ऐसे भयके विचारोंमें उसे भगवान् याद आ गये—'हे प्रभु ! आप भयको भी भय देनेवाले हैं, भीषणके लिये भीषण हैं, प्राणियोंकी गति और पवित्र वस्तुओंको भी पवित्र करनेवाले हैं, उत्तम पदोंका नियमन करनेवाले आप एक ही हैं, परसे भी पर और रक्षकोंके भी रक्षक हैं ।* मेरी आसन्न आपत्तिको मिटावें ।' पराधीनको स्वतन्त्रताके विचार भला कहाँ आ सकते हैं ! कहा है—

'किसी रुतबेका नौकर हो,
मगर आखिर वह नौकर है ।
वह हासिल कर नहीं सकता है
'दानिश' लुत्फे आजादी ॥'

अतः मन-ही-मन भगवान्‌की उपर्युक्त प्रार्थना करते-करते रामकृपालने काँपते हाथोंसे लिफाफा फाड़कर पत्र निकाला । पत्रको पढ़कर जाना कि उसकी अच्छी सेवाओंकी कद्र करते हुए उसे पदोन्नत किया गया है । पढ़कर, उसके चेहरेके उदासी और भयके वे भाव जो कुछ ही क्षण पहले झलक रहे थे, न जाने कहाँ तिरोहित हो गये । मुखमण्डल विकसित कमलके समान प्रसन्नतासे खिल उठा । असलमें, उसने सेनामें कई स्थलोंपर तन-मनसे बहादुरीके काम किये थे । इसीसे प्रसन्न होकर उसके उच्चाधिकारीने बिना किसीकी सिफारिशके उसको ऊँचे ओहदेपर चढ़ा दिया । क्यों न हो—

'उस नौकर को सिफारिशकी
ज़रूरत क्या है अय दानिश'—
जो अपनी जात में जौहर
वफ़ादारीका रखता हो ॥'

तारा और रामसुखने इस आनन्द-समाचारको सुनकर अपने इष्टदेव आनन्दकन्द, व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रजीको बारंबार नमस्कार किया—'कामदेवका मान-मर्दन करनेवाले, बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रोंवाले तथा व्रजगोपोंका शोक हरनेवाले कमलनयन भगवान्‌को नमस्कार करते हैं, जिन्होंने अपने कर-कमलोंपर गिरिराजको धारण किया था तथा जिनकी मुस्कान और चितवन अति मनोहर है, देवराज इन्द्रका मान-मर्दन करनेवाले उन श्रीकृष्णरूपी गजराजको (हम) नमस्कार करते हैं ।' * और प्रभुकी अहैतुकी कृपापर बारंबार भींगी आँखोंसे उन्हें असंख्य धन्यवाद देकर अन्तःकरणका भक्ति-भाव प्रकट किया ।

ठीक समयपर रामकृपालके पुनः ड्यूटीपर चले जानेके पश्चात् तारा और रामसुख देशसेवाके काममें जुट

---

* भयानां भयं भीषणं भीषणानां
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृत्वमेकं
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥

* मनोजगर्वमोचनं विशाललोललोचनं
विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनम् ।
करारविन्दभूधरं स्मितावलोकसुन्दरं
महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्णवारणम् ॥
(श्रीकृष्णाष्टकम्)

गये। उनके कामोंकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। किंतु उन्हें प्रशंसा सुनना पसंद नहीं था। अतः वे सबसे हाथ जोड़कर यही कहते कि 'कृपया हमें शान्तिपूर्वक निःस्वार्थभावसे देश-सेवाके कार्य करने दें। हम प्रशंसा सुननेके आदी हो जायँगे, तो कार्य करनेमें बाधा पड़ेगी।' कोई भी पुरुष किसी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता है। निःसंदेह सभी पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणोंद्वारा परवश हुए कर्म करते हैं।*

बहन तारा और भाई रामसुखके इन्कार करनेपर भी उनके कामोंकी प्रशंसा दूर-दूरतक और भी दुगुने रूपमें फैलने लगी। सुगंध रुकती कहाँ है!

'तू रह न सकी फूलमें, ऐ फूलकी खुशबू!
काँटोंमें रहे और परेशां न हुए हम॥'
(जगन्नाथ आजाद)

जगह-जगह उनको सभाओंमें मानपत्र दिये गये, परंतु श्रीकृष्णकी कर्मयोगकी शिक्षाको चित्तमें धारण करके वे प्रशंसाकी परवा न करते हुए रात-दिन कार्यमें जुटे हुए ही हैं, जबतक कि देशमें स्थायीरूपसे सुख-शान्ति स्थापित नहीं हो जायगी और जबतक उनके जीवनका अस्तित्व है, वे स्वयं भी देश-सेवामें लगे रहेंगे और दूसरोंको भी इस ओर प्रेरित करते रहेंगे। यह उन्होंने पक्का प्रण कर लिया है। भगवान्का तो बल है ही उनके पास।

अति भोजन

(लेखक—श्री डी० एस० भगतानी)

अति भोजन करनेकी आदतका प्रचार जितना समझा जाता है उससे कहीं अधिक है। इसके परिणाम-स्वरूप अधिक क्लेश, अस्वस्थता, मानसिक एवं शारीरिक थकावट, बुद्धिकी मन्दता तथा शिथिलता, मानसिक स्थिरताका व्यतिक्रम तथा आध्यात्मिक उन्नतिमें रुकावट होती है।

पैंतीस वर्षकी आयुके पश्चात् हर पक्षमें एक या दो दिनका लघु उपवास करनेपर हममेंसे प्रायः सभीके शरीर और मन दोनोंमें अधिक उत्साह तथा स्फूर्तिका अनुभव होगा।

केवल धनी लोग ही इस अप्राकृतिक व्यवहारसे ग्रस्त हैं, यह असत्य है और इस धारणाको तुरंत निकाल देनी चाहिये। इस आदतको उत्पन्न करनेवाले विविध कारणों (जिनका वर्णन नीचे किया गया है) के सावधानीपूर्वक अध्ययनसे स्पष्ट हो जायगा कि सीमित आयवाले लोगोंपर उनमेंसे कुछ कारण कहीं अधिक और कुछ उतनी ही मात्रामें प्रभाव डालनेवाले होते हैं।

१—प्रायः ऐसा विश्वास किया जाता है कि हमारी शक्ति और कुशलतामें हमारे भोजनकी मात्राके अनुपातमें वृद्धि होती है। यह ठीक होनेपर भी भोजनकी जितनी मात्रा हम पचा पाते या ग्रहण कर पाते हैं, वही हमें जीवित रखती है और शक्ति प्रदान करती है। बिना पचा भोजन विष-तुल्य है।

'अजीर्णे भोजनं विषम्।'

२—वर्द्धनशील शिशुके विकासके लिये अधिक भोजनकी आवश्यकता होती है। परंतु जब विकास रुक जाता है तो आदतके रूपमें भोजनकी वही अधिक मात्रा दी जाती रहती है, जिससे लाभ नहीं होता।

* न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ३।५)

३—सक्रिय जीवन बितानेवाले युवकगण और शारीरिक श्रम करनेवाले लोगोंको अधिक भोजनकी आवश्यकता होती है। परंतु अवस्थाके आवेगमें मन्दगति आनेपर भी भोजनकी मात्रामें अनुपातसे कमी नहीं बरती जाती। प्रायः भूखकी कमी अस्वस्थताका चिह्न समझी जाती है और तब शक्तिवर्द्धक रसायनों और ओषधियोंकी अपेक्षा होती है।

४—शरीरमें भोजनके आंशिकरूपसे पाचनके कारण अति भोजन किया जाता है। ठीक ढंगसे भोजन चबानेसे पाचन-क्रियामें सहायता मिलती है, इसी प्रकार पर्याप्त पानी पीना भी सहायक होता है।

५—शरीरके लिये आवश्यक कुछ तत्त्वोंका भोजनमें अभाव होनेके कारण अधिक भोजनकी स्वतः तीव्र इच्छा होती है। अभावका पता लग जाता है और यद्यपि हम समर्थ हैं, तब भी विशिष्ट अभावकी पूर्ति करनेके स्थानपर अधिकाधिक खानेमें ही लगे रहते हैं। भोजनको सुस्वादु बनानेसे इनमेंसे विटामिन इत्यादि जैसे अत्यावश्यक तत्त्वोंका लोप हो जाता है। इस प्रकार अधिक भोजन करनेको प्रोत्साहन मिलता है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि मांस और मैदेकी सफेद पूरीपर जीवन निर्वाह करनेवाला व्यक्ति पूर्ण उपवास करनेवालेकी अपेक्षा पहले क्षयको प्राप्त हो गया। चावल और सब्जीका उबला पानी फेंक देने-जैसी हमारी दोषपूर्ण भोजन तैयार करनेकी पद्धतिसे धातुएँ और विटामिन इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। नागरिकोंको संतुलित आहारके सम्बन्धमें यथार्थ ज्ञान होना चाहिये। सस्ती दरोंपर उपयोगको प्रोत्साहन देनेके लिये अतिरिक्त पोषक भोज्य पदार्थों—जैसे दूध आदिको सरलतासे उपलब्ध कराना चाहिये।

६—स्वाभाविक भूख न होनेपर अस्वाभाविक भूख और भोजन करनेके समयकी इच्छाकी संतुष्टिके लिये भोजन करना भी अति भोजन करना है। ऐसे अवसरोंपर एक गिलास जल पी लेनेसे इच्छाकी असत्यताका सही पता लगता है।

७—पेट मांस-पेशियोंसे निर्मित एक थैला है जो भोजन पहुँचनेपर फैलता है। निरन्तर अधिक खाते रहनेसे पेटकी मांस-पेशियाँ एक ऐसी सीमातक फैल जाती हैं कि बिना उस सीमातक पेटको भरे तृप्ति नहीं होती। उपवास थैलेको स्वाभाविक आकार प्रदान करनेमें सहायक होता है और इस प्रकार झूठी भूखको दूर करता है। सलाद, फल, तरकारियाँ आदि जैसे अधिक स्थान घेरनेवाले भोजनसे मानसिक संतोषकी प्राप्ति होती है कि पेट भर गया। जबतक पेट स्वाभाविक आकारका न हो जाय। बादाम, अखरोट आदि जातिके सूखे फल, गरिष्ठ पदार्थ नहीं खाना चाहिये। तथा अंडे, मांस इत्यादि तो कभी नहीं खाने चाहिये।

८—भगवान्‌ने अति भोजनपर प्रतिबन्ध लगानेके लिये जीभकी रचना की है परंतु भोजन पकानेकी कलाने इस उद्देश्यको विफल कर दिया है। सुस्वादु, अधिक मसालेवाला, मधुर भोजन तैयार होनेपर अधिक भोजन प्रारम्भ हो जाता है।

९—बेकार समयका उपयोग भोजन करनेमें किया जाता है।

१०—मदिरा तथा अन्य नशीले पदार्थ हमारी विवेचना-शक्तिको इतना शिथिल कर देते हैं कि हमें पता नहीं लगता कि हमने कब पर्याप्त खाया था, और खाने लगते हैं। इस प्रकार खानेके आदी और समर्थकोंका भूखमें सुधार होनेका दावा एक खतरनाक धोखा है।

११—बार-बार खिलानेसे भी भोजनकी मात्राओंका पता लगता है। चार बार खानेको घटाकर दो बार कर देनेसे निश्चय ही कम होता है, यद्यपि यह सच है कि

आधा नहीं होगा। कुछ लोग दिनभर खाते रहते हैं। इससे निश्चित ही अधिक भोजन हो जाता है।

१२—जब कभी बाढ़, अकाल, गरीबीके समय खाद्य पदार्थकी पूर्ति अनिश्चित रहती है, अभाव-सा रहता है, तब अचेतन मनकी प्रक्रिया अधिक भोजनकी होती है। यह नहीं सोचा जाता कि भरपेट भोजन किया हुआ व्यक्ति कष्टको देरतक सहन कर सकता है; अधिक भोजन करना भरपेट भोजन करना नहीं है। संतुलित आहार संकटकालके लिये सबसे उत्तम होता है।

१३—कुछ लोग इस कारण अधिक खा लेते हैं कि यदि तुरंत भोजन उपयोगमें नहीं लाया गया तो यह खराब हो जायगा। पेटका भंडारके रूपमें उपयोग कर उसके द्वारा विष देनेके स्थानपर अतिरिक्त भोजनका सदुपयोग दीन व्यक्तिको खिलाकर करना चाहिये। प्रत्येक अधिक खानेकी अपेक्षा तो भोजनका नष्ट होना भी बुरा नहीं है।

१४—भोज, सामूहिक खान-पान, वनभोज, होटलों अथवा छात्रावासोंमें रात्रिभोजोंके अवसरपर जहाँ अतिरिक्त भोजनका कोई मूल्य नहीं लगता, अधिक भोजनको प्रोत्साहन मिलता है।

१५—खाद्य-पदार्थोंकी अज्ञानताके कारण बहुत-से लोग शुरूमें काफी खा लेते हैं और बादमें परसे जानेवाले मधुर प्रिय भोजनके प्रलोभनको रोक नहीं पाते हैं, इससे अधिक खा जाते हैं।

१६—भोजनके समय मनोरंजन, मग्न कर देनेवाला वार्तालाप, आनन्द और शिष्टाचारके फलस्वरूप भी अधिक भोजन हो जाता है। अधिक खानेपर रोक लगानेके लिये थोड़ी सजग चेष्टाकी आवश्यकता है।

अन्तमें मैं समस्याके सामाजिक पक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ। खाद्य-पदार्थोंका साधारणतया तीव्र अभाव है और कुछ लोगोंके अधिक खानेके कारण अन्य लोग प्राण-रक्षातकके सीमित भोजनसे भी वञ्चित रह जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, खाद्यपदार्थोंका आयात हमारी पहलेसे ही समाप्त हुई विदेशी मुद्रापर तनाव पैदा करता है।

तो क्यों अधिक खायँ ?

सभी काम युक्त करो

मन-इन्द्रियको वशमें रक्खो, करो कदापि न तनिक प्रमाद।
भोजन परिमित सात्त्विक सेवन करो, न देखो जिह्वा-स्वाद॥
छोड़ो छद्म कपट सब, छोड़ो दंभ सभी मिथ्या आचार।
करो उचित परिणाम-सुखप्रद परिमित सारे युक्त विहार॥
छोड़ो सभी निषिद्ध अहितकर कर्म, करो केवल सत्कर्म।
वे भी परिमित युक्त करो, फिर करो वही जो हों निज-धर्म॥
तामस निद्रावश मत सोओ, असमय, अधिक समय बेकाम।
सोओ युक्त रात्रिको, जिससे मिले नवीन स्फूर्ति विश्राम॥
राग, रोष, वादों, भोगोंमें व्यर्थ नहीं जागो दिन रात।
जागो प्रभु-सेवा-हित नित सुकर्म-रत युक्त छोड़ उत्पात॥

विलक्षण प्रेम और विलक्षण कृपा

(लेखक—श्रीप्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय)

प्रेमयोगिनी मीराँने कितने दर्दभरे स्वरमें गाया था—'हे री मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाणै कोय ।' वह तो श्रीकृष्णके प्रेममें पागल थी, विरह-व्यथासे व्याकुल थी और उसके आत्मीय-स्वजन अपने धर्ममें मस्त थे, वे उसके दर्दके मर्मको भला कैसे समझ सकते थे ? उन्हें तो उसकी सारी हरकत ही उलटी दीखती थी और वे उसके साथ, उसके 'उलटे जीवन'को सुधारनेके लिये उसपर जुल्म ढाते थे । इसीलिये न उसने घबराकर भक्त तुलसीदाससे राय पूछी थी कि ऐसी दशामें उसे क्या करना चाहिये और उस सच्चे ज्ञानीने कितना निःसंकोच लिख भेजा था कि—'जाके प्रिय न राम बैदेही । तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥' सनेही होनेसे क्या, यदि उसे भगवान्पर प्रेम नहीं, जो प्रेम-रससे अनभिज्ञ होकर प्रेमीपर अत्याचार करता है, उस एकको ही करोड़ वैरी मानकर त्याग देना चाहिये । और उपाय भी क्या है ? भला ऐसे प्रेमहीन सनेहियोंके स्थूल धर्मकी रक्षाके लिये कोई भगवद्भक्त अपने अमर धर्मका कैसे त्याग कर सकता है ?

वास्तवमें इस तरहके मीराँ-जैसे सच्चे भक्त दुर्लभ ही होते हैं और ऐसे भक्तोंके पावन दर्शन, चरित्र-श्रवण सब देशों और सब कालोंमें मङ्गलकारी होते हैं । सौभाग्यसे मुझे एक बार ऐसे मुसल्मान बालक भक्तके दर्शन अनायास कुछ क्षणके लिये प्राप्त हुए थे और वे क्षण मेरे जीवनके अमूल्य क्षणोंमें हैं । उन्हीं पावन क्षणोंकी कुछ झाँकी मैं अपने पाठकों-को भी देना चाहता हूँ ।

अपने जीवनके प्रारम्भिक कालमें अवश्य कुछ समझ हो जानेके बाद मैं एक तीव्र आवेग लेकर घरसे बाहर निकल पड़ा था । इच्छा थी कि सारे भारतमें घूम-घूमकर साधु-महात्माओंके दर्शन करूँगा और यदि किसीकी कृपा प्राप्त हो सकी तो अपने जीवनको धन्य बनाऊँगा । उन्हीं भ्रमण-कालीन दिनोंकी बात है । कार्तिक मास था, प्रथम शीतका मधुर स्पर्श आरम्भ हो गया था । प्रफुल्ल मन, स्वस्थ शरीर और हृदयमें उद्दाम आशा लेकर उत्तरप्रदेशके तीर्थोंका भ्रमण कर रहा था । घूमते-फिरते मथुरा आया और सोचा कि दो-एक दिन यहाँ विश्राम करके वृन्दावन चलूँगा ।

पथकी सारी धूल पावन यमुनाके जलमें धोकर मानो यात्राकी सारी थकानसे मुक्त हो गया—प्रसन्नचित्त होकर चुपचाप विश्रामघाटपर बैठ गया । वहीं संध्याके समय भगवान्की आरती देखी । यह आरती मैंने पहले भी देखी थी, परंतु आज······—मानो उसमें कुछ नयापन था—सात्त्विक उपासनाके साथ मानो अपूर्व शिल्प-चातुरीका समा-वेश था । ऐसा मैंने भारतके और किसी तीर्थमें नहीं देखा । बैठे-बैठे एक अपूर्व तन्मयताका अनुभव कर रहा था ।

भीड़ धीरे-धीरे कम होने लगी । कितने ही नर-नारी आये और चले गये । कुछ प्रौढ़ व्यक्ति घाटकी सीढ़ियोंपर बैठकर संध्या-वन्दन करनेके बाद आचमन करके चले गये । कितने ही देशी-विदेशी आये और चले गये; कितनी ही मथुरावासिनी मधुरहासिनी रमणियाँ अपने आकर्षक स्वरका आनन्द बिखेरती हुई निकल गयीं । अब मैं भी वहाँसे चलनेके लिये तैयार हुआ ।

घाटके पास ही रास्तेमें एक मुसल्मान खड़ा था; एक-दम साधारण नहीं, कुछ-कुछ भद्र और आधुनिक ही प्रतीत होता था । उसकी कच्ची-पक्की मूँछ-दाढ़ी वैसी ही छोटी-छोटी छँटी हुई थी जैसे प्रायः उत्तर भारतके मुसल्मानोंकी देखी जाती है । धूपमें तपा हुआ उसका मुख लालिमासे उज्ज्वल था, छोटी-छोटी आँखोंकी दृष्टि काफी पैनी थी । उसके हाव-भावसे ऐसा लगता था मानो कोई खोयी हुई चीज खोज रहा हो । देखा, मुझपर भी उसकी दृष्टि निबद्ध है । उससे आँख मिलते ही मेरे अंदर कौतूहल जग उठा । धीरे-धीरे आगे बढ़कर मैं उसके सामने खड़ा हो गया । प्रौढ़ वयस् होने पर भी उसके चेहरेपर एक भव्यता विद्यमान थी ।

वही तीक्ष्ण दृष्टि,—सिरसे पैरतक मेरी ओर निहारकर, अपने मुँहपर हाथ रखकर वह कई बार खाँसा; फिर मेरी ओर देखते हुए ऐसे खड़ा हो गया मानो मुझे ही उससे बात करनी हो, गरज मेरी हो । मैंने भी बस आरम्भ कर दिया, हिंदीमें उससे पूछा, 'लगता है आप यहाँ किसीको खोज रहे हैं ।' वह बोला—'जी हाँ' और इतना कहकर वह चुप हो गया । कुछ देर मौन रहकर उसने मुझसे पूछा—'आप बंगाली हैं ?' उसके मुँहसे 'बंगाली' शब्द

ऐसा कटु एवं विद्वेषपूर्ण प्रतीत हुआ कि सुनते ही मेरा अन्तःकरण विषाक्त हो गया, बड़ी बेचैनीका अनुभव हुआ, फिर भी मैंने धीरेसे उत्तर दे दिया—'जी हाँ।'

वह बोला—'शायद मथुरा-वृन्दावन तीरथ-जात्राके लिये आये हैं?' इसका भी उत्तर दे दिया। वह फिर बोला—'कलकत्तेसे आये हैं?' हामी भर ली। मन-ही-मन संदेह हुआ, कहीं पुलिसका आदमी तो नहीं है? इससे पूर्व मुझे इस बातका काफी अनुभव हो चुका था कि बंग-संतानकी रिहाई विदेशमें भी नहीं होती—पुलिस पीछा करती ही रहती है।

वह कुछ देर मौन रहकर एक बार चारों ओर ताका और फिर कुछ भाव-भंगी करता हुआ नरम स्वरमें बोला—'साधुजी! उस बड़े फाटकके पास ही मेरा गरीबखाना है, आपसे कुछ बात करनी है, मिहरबानी करके एक बार वहाँ चलेंगे क्या?'

'गरीबखाना'—कितना विनयपूर्ण वचन है! सोचा, शायद दौलतखाना ही हो। बड़ा फाटक नजदीक ही था, इसलिये थोड़े समयमें ही उसके दौलतखानेपर जाकर जो दृश्य देखा उससे और आगे पैर बढ़ानेका उत्साह न रहा। मनुष्यके चेहरे और वेशभूषाके साथ उसके निवासस्थानका सम्बन्ध कितना विपरीत हो सकता है, वह विषमता कितनी गहरी हो सकती है यह स्वयं आँखोंसे देखे बिना कोई विश्वास नहीं कर सकता, विश्वास करनेकी बात ही नहीं। पर उस बातको जाने दें, अब मेरे मनमें कुछ खलबली मची, बोला—'यमुना-तीरपर ही क्यों न चलें, वहीं कहीं बैठकर हम बातचीत कर लेंगे।' वह मेरे मनकी बात समझ गया और तुरंत राजी हो गया। हम फिर यमुना-तटपर आ गये और एक छत्तेदार चबूतरेपर बैठ गये। रेलका पुल निकट ही था, गाड़ी उसपरसे होती हुई चली गयी; वह व्यक्ति उसी ओर ताक रहा था। मेरा चित्त अब अस्थिर हो उठा। मैं बोला, 'अब कहें न जो कुछ कहना हो।'

'हाँ कहता हूँ साधूजी! मेरा एक लड़का है, वही एकमात्र लड़का है मेरा। आज दस-बारह दिनसे लापता है।' यह सुनते ही मैं बोल उठा, 'पर मैं क्या कर सकता हूँ?' वह व्यक्ति अब मानो कुछ कातर स्वरमें बोला, 'आप सब बात सुन लें, फिर उसके बाद जो इच्छा हो कहें।' और वह अपनी कहानी सुनाने लगा।

'मेरे लड़केकी कहानी बड़ी ही अजीब है। उसका स्वभाव बड़ा विचित्र था। हमलोग मुसल्मान हैं, आप नहीं जान सकते, हम बादशाहकी जात हैं—सुलतान आलमके अमलसे ही दिल्लीमें हमारा बड़ा रोब-दाब रहा है, एक वक्त सारा हिंदोस्तान ही हमारे हुक्मपर चलता था। डाफराइन लाटसे हम जागीर लेकर आगरेमें बस गये—अखबारमें यह सब छपे हुए हरफोंमें दर्ज है।'

मेरे लिये यह असह्य हो गया। इस सबसे छुटकारा पानेकी आशासे मैं व्याकुल होकर प्रार्थनासूचक स्वरमें बोला—'दुहाई शाहजादा साहब, अब अपने लड़केकी बात—।'

'हाँ, हाँ, वह कहता हूँ। लेकिन ठाकुरजी! हमारे खानदानका किस्सा जाने बिना आप यह कैसे समझ सकेंगे कि कितने बड़े घरका लड़का होकर उसने कितनी बड़ी अहमकी की है! इसीलिये पहले—।' मैंने हाथ जोड़कर कहा, 'अब यदि असली बातपर आ जायँ……।'

तब उसने फिर कहा—'हाँ, वही कहता हूँ……हमारा जो मजहब है, एक दिन सारी दुनियाको उसे कबूल करना होगा, नहीं तो किसीका उद्धार नहीं हो सकता। हम वही मुसल्मान हैं; हिंदू हमारे लिये काफिर हैं। हर एक हिंदू, वह चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, हमारे लिये बस काफिर ही है। हमारे मुल्ला उनके सायेसे भी अलग रहते हैं। खुदाकी मिहरबानीवाले हमारे इस मजहबकी खासियत समझकर यदि कोई काफिर भी इस मजहबको कबूल करे तो हम उसे अपने-जैसा ही बना देंगे, लेकिन काफिरके साथ हमारा दोस्ताना नहीं चल सकता……।'

असह्य हो गया! किस मुसीबतमें आ फँसा! पर उपाय भी क्या, सुनना ही पड़ेगा। वह तो अब अपने मजहबकी महिमा गानेमें डूब गया था और अब मुझे भी उसके लड़केकी अद्भुत कथा सुननेका कोई कौतूहल नहीं था। कुछ देर बाद, जब और न सह सका, तो झट बोल उठा—'अच्छा, आप बैठिये, मैं तो अब घर चला।' और इतना कहकर एकाएक खड़ा होकर उसे सलाम ठोंक दिया। वह तो अवाक् हो मेरी ओर देखने लगा मानो मैंने कोई बड़ा विकट अभिनय कर डाला हो। वह नरम स्वरमें बोला—'जरा बैठिये, अब महज लड़केकी ही बात कहूँगा।'

बाध्य होकर फिर बैठ गया। उसने आरम्भ किया—'आप क्या जानें, हमारे पाक मजहबके साथ हिंदुओंके

बुतपरस्त मजहबकी कोई बराबरी ही नहीं हो सकती। हमारा ईमान कुरानशरीफमें ही है। उसमें लिखा है कि हिंदू कभी बहिश्तमें कदम नहीं रख सकते, उन्हें तो जहन्नुममें ही जाना पड़ेगा। इसीलिये हमारे खानदानमें लड़कोंको शुरूसे ही ऐसी तालीम दी जाती है कि उसका ईमान इस मजहबमें पक्का हो जाय।' देखा, भीतर एक प्रबल रोष उसे पीड़ित कर रहा है; पर बोले बिना भी शान्ति नहीं। मैंने व्यग्रभावसे कहा—'अब सुनाइये, अपने लड़केकी बात।'

'हाँ, वही कह रहा हूँ। मेरा लड़का······उसका नाम है दादर रहमान, वह मकतबमें पढ़ता था; दो-तीन अंग्रेजीकी किताबें भी पढ़ा था; शान्त तबीयतका था। उसे सब प्यार करते थे। वह थोड़ा शर्मीला था, अधिक बोलता-चालता नहीं था। फिर भी हम उसे बड़े अदब-कानूनके मुताबिक रखते थे—हमारे खानदानका तरीका जो यही ठहरा। मुझे यकीन था कि वह एक दिन पक्का मुसल्मान होगा। इस वक्त उसकी उम्र तकरीबन सोलह सालकी होगी। एक दिन उसने अपनी माँसे एक बेढब सवाल कर दिया। क्या कहा उसने, जानते हैं?'—इतना कहकर आँखें फाड़-फाड़कर वह मेरे मुँहकी ओर ताकने लगा, जैसे यह देख रहा हो कि मैं भी अवाक् हो रहा हूँ या नहीं। मैंने कहा, 'मैं कैसे जान सकता हूँ? मैं तो उस समय वहाँ उपस्थित नहीं था?'

'उसने क्या कहा, जानते हैं?' वह बोला—'अम्मी! तुमलोग हिंदुओंको काफिर क्यों कहती हो? बोलो, आज मुझे बताना ही होगा।' माँ तो हुई औरतकी जाति, वह कुछ भी बोल न सकी। उसने रातको मुझे बताया कि लड़केने यह बात पूछी थी। सुनते ही मेरे बदनमें आग लग गयी; सीधे उसका कान पकड़ बाहर खींच लाया और तड़ातड़ बेंत लगाते-लगाते बोला, 'जो हमारे पाक इस्लाम मजहबपर ईमान नहीं लाते, बुतोंको पूजते हैं, उन्हें काफिर कहते हैं, यह कुरानमें लिखा है, तुम फिर कभी यह बात पूछोगे? हिंदुओंका नाम लोगे?' उसके मुँहसे एक लफ्ज न निकला; मेरी बातका कोई जवाब ही उसने नहीं दिया। 'मेरा साँस फूल गया।' कहकर वह हाँफने लगा। फिर बोला, 'हमें खुदाताल्लाने पैदा किया है' हमारे लड़कोंके मुँहसे ऐसी बातें क्यों?

'खैर, उसे जाने दें। उस दिनसे लड़केने फिर कोई बात नहीं पूछी। उसने एक संजीदा रवैया अख्तियार कर लिया। किसीसे कुछ न बोलते हुए चुपचाप दिन गुजारने लगा। मैंने सोचा, सख्त सलूक बरतनेसे उसे अक्ल आ गयी है।

'कासिम नामका मेरा एक भतीजा है, उसीके साथ पढ़ता था। कासिम अभीसे पाँच बार नमाज पढ़ता है, जो हम भी नहीं कर सकते। वह बहुत ऊँचे किस्मका मुसल्मान है; पीछे वह एक नामजादा आदमी होगा, ऐसा हम सबको यकीन है। उस वाकयाके कुछ दिन बाद कासिमने एक दिन शामकी नमाजके बाद चोरी-चोरी आकर मुझसे कहा, 'चचाजान! दादर तो एकदम काफिर हो गया है। हिंदुओंके मन्दिरमें जो देवता हैं उनकी ओर देखा करता है, दरवाजेके पास खड़ा होकर चुपचाप देखता रहता है, फिर मुँह-ही-मुँह बुदबुदाकर न जाने क्या बोलता है, रोता भी है, उसकी आँखोंसे पानी बहने लगता है। मैंने यह सब खुद देखा है।'

मुसल्मान-प्रवर जरा दम लेकर फिर बोलने लगे—'कासिमके मुँहसे यह सुनकर मैं लड़केको लेकर दरगाह शरीफ गया, जहाँ हमारे मुल्ला, हाफिज, हाकिम रहते हैं। उन्होंने कासिमसे सब बातें कुरेद-कुरेदकर पूछीं। जो-जो उसने ठीक अपनी आँखोंसे देखा था, सब कुछ कासिमने बताया। उसने कहा, ''परसों जब हम एक साथ मकतबसे आ रहे थे तो उसने मुझसे कहा कि तुम घर जाओ, मैं जरा ठहरकर आऊँगा। मैं जानता था कि रास्तेमें जो काफिर हिंदुओंका मन्दिर है वहीं वह जायेगा और इसीलिये मुझे भगाना चाहता है। मैंने कहा कि 'मैं तुझे वहाँ नहीं जाने दूँगा, वहाँ जानेसे तू काफिर हो जायगा।' 'यह सुनकर वह बोला, 'भाई! तूने उस मन्दिरके देवता किशनजी और उनकी बीबीको देखा है?' मैंने कहा, 'वह सब क्या हमारे देखनेकी चीज है रे! हम तो ईमानदार पक्के मुसल्मान हैं।' दादरने मेरी बातपर जरा भी कान नहीं दिया और ही बहुत-सी बातें बोलने लगा। अन्तमें बोला, 'खुदाने ही तो सबको पैदा किया है, फिर उनकी दुनियामें हमें जो अच्छा लगेगा उसे हम क्यों नहीं देखेंगे? इसमें तो किसीका कोई नुकसान नहीं। इसमें गुनाह क्या है, अगर मुझे अच्छा लगता है तो देखनेमें कसूर क्या है?'

''उसकी यह बात सुनकर मुझे गुस्सा आ गया। मैंने दादरसे कहा, 'तू तो जरूर काफिर हो गया है। हमारा अल्लाह तुझपर खफा होगा। तुझे काफिरोंके साथ जहन्नुममें भेजेगा।' मेरी बातका उसपर कोई असर नहीं हुआ। सिर्फ इतना बोला, 'खुदा तो सब कुछ देखता है; मैंने अगर कोई कसूर नहीं किया तो वह क्यों मेरे ऊपर खफा होगा?' हाँ, उसने इतना और कहा था कि 'क्या हमारे-जैसे छोटे कमजोर आदमियोंकी तरह अल्लाहमें भी गुस्सा-गिला है! मुहब्बत हुए बिना क्या अल्लाहके पास जाया जा सकता है! जहाँ मुहब्बत है वहाँ गुस्सा कभी रह सकता है?''

हाफिजने ध्यानसे सब कहानी सुनी और वह बोले—'जरूर काफिर पंडितोंके लड़के इसके पीछे लगे हैं और यह सब काफिरी सीख है।' कासिम बोला, 'पण्डितोंके लड़कोंके साथ तो उसे मैंने कभी नहीं देखा। इसके सिवा हम तो कभी उनके साथ नहीं मिलते-जुलते और न वे ही हमारे साथ मिलते-जुलते हैं।' यह सब सुनकर हाफिज मुल्ला फरूखसियारके साथ मशविरा करने गये। हम घर चले आये। आकर देखा, दादर घरमें गुमसुम बैठा था। उसका चेहरा देखकर ऐसा बिल्कुल नहीं लगता था कि उसके मनमें कोई पाप या गुनाह है। यह इतना शैतान है, अपना मतलब इस तरह छिपाकर रखता है। कौन उसका सलाहकार है, कौन काफिरका बच्चा उसे यह सब सिखाता-पढ़ाता है, यह सब उसके मुँहसे निकलवानेके लिये उस रात मैंने उसे इतना मारा कि वह बेहोश हो गया लेकिन फिर भी उसने कुछ भी नहीं बताया।

यहाँतक सुनते-सुनते मन ग्लानिसे भर गया। इनकी अज्ञ बुद्धि कितनी नीचे जा सकती है, कैसे ये सत्य वस्तुको दबाकर मिथ्याकी इमारत खड़ी कर सकते हैं—यही सब सोचकर मनमें बड़ी उदासी, तिक्तता और विरक्ति भर गयी। सोचा, बालकके दैवानुग्रहजनित प्रेम-धर्मके विषयमें उसका पिता या समाज अनभिज्ञ है। सहज दृष्टिसे जो वस्तु देखी जा सकती है उसे वे नहीं देखेंगे; देखेंगे उसे जो वास्तवमें नहीं है, अपनी-अपनी ईर्ष्या-द्वेषजनित कल्पनाकी आँखोंसे। मैं समझ गया कि उन्हें यह संदेह है कि किसी पण्डित या पण्डितोंके लड़कोंने उनके धर्म-प्रवण मुसल्मान बालकको सरल पाकर बहकाने और हिंदू बनानेकी चेष्टा की है। एक बात कहे बिना न रह सका, यद्यपि जानता था कि वह विफल ही होगी। पूछा—'मिर्जासाहब, आपकी आयु तो पचासके ऊपर होगी।'

'हाँ, इस रमजानमें पचपन हो गयी है।'

'अच्छा, तो क्या आपने कभी ऐसा देखा है कि किसी हिंदूने किसी मुसल्मानको हिंदू बनानेकी चेष्टा की है?'

वह सिर हिलाकर बोला, 'पहले तो कभी नहीं देखा था, लेकिन अब 'शुद्धि' जो शुरू हो गयी है।'

'वह तो असली मुसल्मानोंके लिये नहीं है, बल्कि जो पहले हिंदू थे और किसी कारणसे जाति या समाजसे बाहर हो गये थे या मुसल्मान हो गये थे उनके लिये है। उनमेंसे यदि कोई फिर अपने धर्ममें आना चाहे तो···।'

'सो तो ठीक है, बाहरसे ऐसी बातें बनाकर ही लोगोंको बतायी जाती हैं। अंदर-अंदर उनका क्या मतलब है यह कौन कह सकता है! हाँ, तो भी सच्चे मुसल्मानको तो वे नहीं ही बदल सकेंगे, यह ठीक ही है। अभी छोटे-छोटे लड़कोंके ऊपर, जिनका दिल हलका है, आजमाइश करके देख रहे हैं शायद···।'

इसके ऊपर कुछ कहनेकी गुंजायश तो नहीं थी, फिर भी मैंने कहा—'मिर्जासाहब! आपने क्या नहीं सुना है कि धर्मान्तर ग्रहण करनेमें हिंदू विश्वास नहीं करते! हिंदुओंकी तो धारणा ही यह है कि हिंदू होकर जन्म लिये बिना हिंदू नहीं हुआ जा सकता।'

मिर्जासाहब बोले—'हाँ, वह तो सुना है, लेकिन···।'

यह 'लेकिन' ही तो सर्वनाशका कारण होता है। अब देखा कि वे कुछ आर्द्र हो गये हैं। करुण नेत्रोंसे ताकते हुए बोले, 'उसके बादकी बात भी जरा सुन लीजिये। जिस दिन वह लापता हुआ उससे दो-एक दिन पहलेसे वह न जाने कैसा हो गया था। उसकी माँने मुझसे कहा कि 'तुम लड़केकी तरफ देखते नहीं! मुझे लगता है कि किसी देवताने उसे धर दबाया है, नहीं तो उसकी आँखें हर वक्त लाल क्यों रहती हैं! ऐसा लगता है मानो उनमें पानी भरा हुआ है। किसीके साथ बात करते समय उसकी आँखोंसे झर-झर पानी झरने लगता है। कोई उसके पास जाय तो वह वहाँसे दूर सरक जाता है, हमेशा अकेलेमें ही रहना चाहता है। यह सब

देखकर मुझे तो डर लगता है।' उसकी माँकी यह बात सुनकर मैं उसी रात लालटेन लेकर उसके बिस्तरको देखने गया, देखा, वह वहाँ था ही नहीं। कहाँ गया !××× और वह एक ही जगह रहते थे। देखा, ××× वहीं सोया हुआ था। उसे आवाज देकर उठाया और पूछा तो उसने कुछ सोचकर कहा कि मैं कुछ नहीं जानता, न जाने कब उठकर चला गया। ऐसा तो वह रोज ही करता है। मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गया तो देखा कि एक कुएँकी मेड़पर अँधेरेमें चुपचाप बैठा है। मैंने पकड़कर उसे बेदम मारना शुरू कर दिया। मारकी चोटसे भूततक भाग जाते हैं, यह हम सब खूब अच्छी तरह जानते हैं। किंतु इतनी सख्त चोटोंके पड़नेपर भी उसपर कुछ असर न हुआ, वह शैतान शैतान ही बना रहा। हैरानीकी बात यह कि इतनी मार खाकर उसने चूँतक न किया, गुस्सेकी एक मामूली-सी बात भी उसके मुँहसे नहीं निकली। उसके बाद जब एक दिन अपनी बीबीके कहनेसे मौलालीसे एक ओझाको बुला लाया तो फिर वह भाग गया। जानेसे पहले ××× कह गया कि 'मेरी उम्मीद छोड़ दो, लाड़ली मुझे बुलाती है, मैं एकदम काफिर हो गया हूँ।'

'उस दिनसे उसका कोई पता नहीं; मैंने लेकिन उम्मीद बिल्कुल नहीं छोड़ी है। आज दो हफ्ते होनेको आये, रोज एक बार इन सब जगहोंपर घूम-घूमकर उसे ढूँढ़ता हूँ। एक इतने बड़े घरका लड़का आखिरमें काफिर हो जाय यह कैसे सहा जा सकता है !'

मैंने पूछा—'तो आप मुझे क्या करनेको कहते हैं ?'

मिर्जासाहब बोले—'मेरा वही एक लड़का है, मैं अब भी उसे लौटा लाना चाहता हूँ। आप जब घाटपर बैठे थे तभीसे आपको देख रहा था। उसके बाद जब आप उठकर आये तो ऐसा लगा मानो आपके जरिये उसका पता लग सकता है।'

'परंतु आपका लड़का तो अपनी इच्छासे काफिर हो ही गया है, इतनी यातना मिलनेपर भी जब वह बदल नहीं सका तो उसका पता मिलनेपर भी क्या आप उसे घर ले जा सकेंगे ?'

उत्तरमें उसने कहा—'वह अभी नादान बच्चा है, बिना समझे-बूझे एक काम कर बैठा है। उसे उसकी गलती समझाऊँगा, हमारी दरगाहोंमें जो बड़े-बड़े फकीर औलिया हैं उनके पास ले जाऊँगा, उनकी शक्तिके असरसे उसकी रवैया बदल जायगी, मुझे पक्का यकीन है।'

'अच्छा, यदि कभी कहीं उसका पता मिल गया तो मैं आपको खबर कर दूँगा।' उसने मुझे अपना पता दे दिया। अगले दिन मैं मथुरासे चल पड़ा।

× × ×

वृन्दावन मेरा सुपरिचित और अति प्रिय स्थान है। अनेक बार वहाँ आ-जा चुका हूँ। राधाबागके ब्रह्मचारी-आश्रममें ही मैं बराबर ठहरा करता हूँ। वहाँ स्वामी केशवानन्दके आश्रममें मैंने लंबा समय बिताया है। वहीं इस बार भी ठहरा। दूसरे दिन बादलोंसे भरी साँझके समय मैं घूमनेके लिये यमुनातटकी ओर गया। वहाँ वनचारी साधुओंके आश्रम हैं। उनके आसपास ही घूम रहा था। सामने यमुना फैली हुई थी, उसके उस पार बहुत दूरतक उसकी तट-भूमि फैली थी, बीच-बीचमें दो-एक पेड़ थे, उसके पीछे सुदूर प्रान्ततक वृक्ष-श्रेणीकी गाढ़ नीलाभ रेखा दिग्दिगन्त तक व्याप्त हो आकाशके साथ मिल गयी थी।

जहाँ बैठा था, उससे कुछ दूरीपर तीन अपूर्व विशाल वृक्ष खड़े थे। सुन्दर सुपरिष्कृत, तृणहीन भूमिपर लंबे-लंबे तीन वृक्षोंके मूल इस प्रकार समान अन्तरपर विद्यमान थे कि उनके बीच एक सुन्दर त्रिकोण क्षेत्रकी सृष्टि हो गयी थी। प्रकृतिद्वारा रचित ऐसा क्षेत्र प्रायः देखनेको नहीं मिलता, यह मानो किसी योगीका आसन हो। वह क्षेत्र उस समय खाली नहीं था। देखा, उसके भीतर कौपीनधारी एक मूर्ति अद्भुत भंगिमाके साथ बैठी है। वह भंगिमा ऐसी चित्ताकर्षक थी कि मेरी दृष्टि बलपूर्वक उसी ओर खिंची रह गयी। प्रथम दृष्टिमें ही ऐसा लगा कि वह मूर्ति किसी वैष्णव एवं योगीकी है, उसका बैठनेका ढंग योगी-जैसा ही था।

मेरी प्रकृति बचपनसे ही कुछ ऐसी बन गयी है कि किसी साधुकी मूर्ति सामने आते ही उधर सहज ही आकर्षित हो जाती है। विशेषकर शान्त-धीर प्रकृतिका कोई साधु हो तब तो उससे परिचय प्राप्त करनेके लिये मन-प्राण अधीर हो उठते हैं। लगता है मानो वे मेरे जन्म-जन्मान्तरके अपने परिचित हों। इसी कारण इस बार भी मैं अपनी जगहपर स्थिर न बैठ सका, उठ पड़ा और निमिषमात्रमें उस स्थानपर जा पहुँचा। वहाँ देखी एक अद्भुत बालक-

मूर्ति—स्वास्थ्यपूर्ण, सुडौल शरीर, उज्ज्वल गौर वर्ण, कौपीन-मात्र वस्त्र। लगा जैसे व्यासपुत्र परमहंस शुकदेवकी ही मूर्ति देख रहा होऊँ। वह रूप देखकर मैं निर्वाक्, अपलक हो गया। चित्रकारपर रूपका प्रभाव बड़ा ही तीव्र होता है यह सभी जानते हैं। रूप बाह्य होनेपर भी अन्तरकी सम्पदाने उस रूपको ईश्वरीय लावण्यसे मण्डित कर रक्खा था; वह लावण्य और कुछ नहीं, ज्योतिका ही दूसरा नाम है। वास्तवमें यह ज्योति ही चित्रकारके लिये काम्य है।

उन दिनों कुछ ठंड थी, किंतु बालकके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था, शायद उसे इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। किंतु मेरी बुद्धि तो स्थूल देहगत बुद्धि ठहरी, उसका शीतबोध अपने ऊपर आरोपितकर अपने शरीरका गरम कपड़ा उसे ओढ़ा दिया। उसकी अपलक दृष्टि यमुनाकी ओर निबद्ध थी, मुँहमें कोई शब्द नहीं। सोचा, वनचारी वैरागियोंका कोई बालक भक्त होगा। साधु-सम्प्रदायमें बालक ब्रह्मचारी बहुतेरे देखे हैं, पर ऐसी आँखें बहुत कम देखनेमें आती हैं। पद्मपलाश नेत्रोंकी बात हम सबने सुनी होगी—वे नेत्र अरुणवर्ण थे, उनमें जल झलमल कर रहा था, मानो अभी-अभी झर पड़ेगा। ऐसी किशोर साधुमूर्ति मैंने जीवनमें प्रथम बार ही देखी थी।

मथुरासे आनेके बाद अबतक उस भद्र मुसल्मानके पुत्र दादर रहमानकी बात ही मेरे मनमें बार-बार आया करती थी। उसके अन्तरमें प्रेम-धर्मकी स्फुरणाकी बात, उसका बिना क्रोध किये इतना अत्याचार सहना, फिर दृढ़-संकल्प बालकका गृहत्याग, जाने कहाँ अन्तर्धान हो जाना आदि-आदि बातें बार-बार आकर मनमें हलचल पैदा करती थीं। किंतु जैसे ही इस मूर्तिको सम्मुख देखा वह सब बातें काफूर हो गयीं, इसी मूर्तिपर चित्त तन्मय हो गया, प्रश्न करूँ या न करूँ यह सोचनेकी भी प्रवृत्ति नहीं रही। बैठे-बैठे उसे ही देखनेमें मग्न हो गया।

इसी समय एक व्रजवासिनी घाघरा, चोली, ओढ़नी सब कुछ नीले रंगका धारण किये हुए आ उपस्थित हुई। उसके एक हाथमें एक थाल कपड़ेसे ढका था, निश्चय ही उसमें कुछ खाद्य पदार्थ था; दूसरे हाथमें एक साफ झकझक करते हुए लोटेमें कुछ पेय था। अति कमनीय था उसका मुखमण्डल; अपूर्व भाव-भंगीके साथ खड़ी होकर उसने धीरे-धीरे हाथकी चीजें उस किशोरके सामने रख दीं। वह बोली—'दुलाल मेरे, अब कुछ खा लो तो, मैं अभी तुम्हें खिलाकर घर जाऊँगी; फिर वहाँका काम समाप्त कर संध्या-समय पुनः यहाँ आऊँगी और तुम्हें वहाँ ले चलूँगी।'

यह सब मधुर व्रजभाषामें कहकर वह उसके मुखकी ओर स्नेहभरी आँखोंसे देखने लगी। मैं वहाँ एक अपरिचित व्यक्ति भी उपस्थित हूँ—इस ओर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं था; मानो उसके सामने उस किशोरके सिवा और कोई न हो। उसकी बातें इतनी मधुर थीं कि भाषाके साथ कण्ठ-स्वर मिलकर एक अपूर्व संगीतकी सृष्टि कर रहा था।

साधुमें किंतु कोई भावान्तर नहीं हुआ; वह जैसे अपलक यमुनाकी ओर ताक रहा था वैसे ही ताकता रहा। यह देख उस व्रजाङ्गनाने व्याकुल-भावसे 'मेरे लाल' कहते हुए उसके चिबुकका स्पर्श किया। उस समय वह ध्यानस्थ किशोर तनिक चौंका, किंतु उसके नेत्र वैसे ही अपलक बने रहे।

फिर एक बार उस नवागताके मुँहकी ओर देखकर वह बोला, 'चम्पा, मुझे ले चलो, ले चलो,' और ऐसा कहते-कहते उठने लगा। जननीकी तरह स्नेहसे हाथ पकड़कर मधुर भाषामें वह व्रजनारी बोली, 'अभी नहीं मेरे लाल! अभी कुछ खा लो, उसके बाद संध्या-समय आकर तुम्हें ले जाऊँगी।' इतना कहकर उसने थालमेंसे एक ग्रास उठाकर उसके मुँहमें डाल दिया। दो-एक ग्रास ही उसने खाया, बहुत चेष्टा करनेपर भी उसे और अधिक न खिलाया जा सका। अन्तमें थोड़ा-सा दूध पीकर वह किशोर फिर समाहित-चित्त होकर यमुनाके तटवर्ती वनकी ओर देखने लगा। अब मेरी ओर ताककर वह व्रजबाला विनतीभरे करुण स्वरमें बोली—'बाबा! यदि तुम कुछ देर यहीं रहो तो कोई हर्ज है?'

मेरे उत्तरसे वह प्रसन्न हुई, किंतु फिर उस बालककी ओर देखकर अश्रुपूर्ण नयनोंसे बोली—'कल ही मुझे लाड़लीजीने कह दिया था कि उसका सब समय ध्यान चलता रहता है, होश नहीं रहता, उसे खिला दो, नहीं तो उसका शरीर नहीं टिकेगा। दस-बारह दिनसे कुछ नहीं खाया, थोड़ा-सा दूध, बस। इससे क्या शरीर रह सकता है?' उसके बाद चकित हरिणीकी तरह घूमकर उसने किशोरको देखा, कहा—'क्या करूँ? अच्छा मेरे गोपाल! तुम

यहीं रहो। मैं घर जाती हूँ। मुझे तो अभी घरका काम करना है। साँझको आकर तुम्हें ले जाऊँगी। अच्छा।'

किशोर निर्वाक्, समाहितचित्त अपने आसनपर बैठा रहा। व्रजवासिनीका अन्तर्धान भी कुछ विचित्र-सा ही लगा। जब मैं उस ध्यानमग्न योगी-मूर्त्तिकी ओर देख रहा था, तब जरा मुड़कर उसे एक हाथमें लोटा और दूसरे हाथमें थाल लेकर जाते हुए देखा था। उसके बाद वह आगे बढ़ते-बढ़ते न जाने कहाँ विलीन हो गयी। वहाँ कोई पेड़ अथवा और किसी प्रकारकी आड़ नहीं थी, यह मुझे पूर्ण स्मरण है।

लड़कीका आना-जाना और इस थोड़ेसे समयके लिये रहना—इस सबके भीतर जो कुछ देखा उससे लगा कि वृन्दावनके यमुना-तटपर इस किशोर वैरागीको केन्द्र करके एक महान् आनन्दमय अपार्थिव खेल चल रहा है।

खैर, हमारी समझ भी कितनी। भक्तिधर्म, प्रेमधर्म आदिकी बातें साधु-महात्माओंके मुँहसे हम सुनते रहते हैं—कभी-कभी मनमें यह अभिमान भी होता है कि हम उसका तात्पर्य समझ गये, परंतु भगवान् ही जानते हैं कि उसे समझने योग्य यथार्थ बुद्धि हममें कितनी है! यह सब देख-समझकर ही अब यह कहता हूँ कि इस स्थानमें सब कुछ अद्भुत है! इस बार मथुरामें पदार्पण करनेके दिनसे ही सब कुछ अद्भुत, अपूर्व और अप्रत्याशित अनुभव हो रहा था। यह सब ऐसा आकर्षक था कि मैं स्तम्भित हो रहा था।

अब साँझ होनेको आ गयी। यमुना-तीरपर खूब हवा चल रही थी। परंतु योगीकी ओर देखनेपर ऐसा लगता था मानो आकाश-वाताशका कुछ भी कार्य उसके लिये इन्द्रियगोचर नहीं था। मेरी बात करनेकी प्रबल इच्छा हो रही थी। सोचा, क्या पूछनेपर कुछ नहीं बोलेगा? 'हरि हरि' शब्दका उच्चारण इस तरह करने लगा जिसमें उसे सुनायी दे जाय। मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण हुई; उसने मेरी ओर देखा। मैंने कहा, 'बाबाजी! तुम्हें क्या कष्ट है?'

वह धीरे-धीरे बोला—'कष्ट! मुझे तो कोई कष्ट नहीं—मैं तो वृन्दावनमें हूँ—जब मैं मथुरामें अपने घरमें था, माँ, बाप, भाई सब मुझे न समझ मुझे कितना मारते थे—मैं उनके मनमाफिक नहीं हो सका इसलिये……' आह! अब उस बातकी जरूरत नहीं।' जरा रुककर फिर बोला—'वे यह नहीं जानते कि ईमान क्या चीज है, इसीसे उन्हें डर था कि मेरा ईमान बरबाद हो जायेगा, मैं काफिर हो जाऊँगा, 'वही तो लाड़ली, वही जो कन्हइया' यह कहते-कहते उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू झरने लगा। तनिक रुककर फिर बोला—'कितनी मेहरबानी, गोविन्दजी श्रीराधाकी-राध-रा—आह', बस और मुँहसे कुछ न निकला, धीरे-धीरे ऐसी अवस्था हो गयी जैसे संज्ञाशून्य होनेपर होती है। उसके नेत्र वैसे ही अपलक थे। ऐसी अस्वाभाविक आँखें थीं कि उन्हें देखकर डर लगता था। मैं बस देखे जा रहा था। थोड़ी देर बाद वह बोला—'दोस्त! तुम जानते हो राधाकुण्ड कहाँ है?' और व्याकुल भावसे मेरी ओर ताकने लगा।

मैं बोला—'जानता हूँ।' इतना सुनते ही महान् उत्साहके साथ बोला—'तो मुझे वहाँ ले चलोगे?' फिर न जाने क्या उसके मनमें आया, कुछ सोचने-जैसा भाव बनाकर तुरंत बोल उठा—'ना, ना, वहाँ तो तुम जा ही नहीं सकते। ब्रजरानीकी दया हुए बिना तो वहाँ कोई जा ही नहीं सकता, मुझे चम्पा सखी ही ले जायेगी, उसके आनेमें देर है न?' रुक-रुककर, धीरे-धीरे अतीव मृदु स्वरमें ही उसने पूरा किया।

'राधाकुण्डकी कुछ बात सुनाओगे क्या? मुझे सुनकर आनन्द होता है।' मेरे मुँहसे इतना सुनते ही उसके मुख-मण्डलपर गहरे आनन्दकी पुलक, साथ ही उसके शरीरमें एक अनिर्वचनीय सिहरनकी तरङ्ग खेल गयी। उसके चेहरेपर एक दिव्य ज्योति फूट पड़ी जिसका वर्णन करना असम्भव है।

'क्या कहूँ! वहाँका आसमान मुहब्बतसे भरा हुआ है, मुहब्बतकी ही हवा चलती है, यह क्या कहनेकी बात है साधुजी! वहाँ सखा-सखी इस तरह मिल-जुलकर घूमते-फिरते हैं मानो आनन्दसे नाचते हों। उनकी बातें, गाना, हर एक सुर ऐसा है कि कानमें पड़ते ही बेहोश कर देता है दोस्त। थोड़ी देर भी वहाँ रहनेपर आदमी पागल हो जाता है। आ हा!'

कुछ क्षण स्थिर, समाहित रहा और फिर बोला—'वहाँ क्या रौनक है, उनका चेहरा अगर देखते संतजी, ऐसी मूरत है, बस, बहिश्तका रूप; उनके पाँवोंमें पायलकी आवाज कितनी तेज और मधुर है—आह! मेरे कृष्णजी, मेरे……मेरी जिंदगी कामयाब……।' इतना कह वह आगे न बोल सका। मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि

अतीव मृदु स्वरमें वह फिर बोला:—'वंशीपीठमें बैठे हुए उनकी बाँसुरी सुनते ही बाबाजी ! वह तान······जिंदा सुर······जैसे छातीमें पैठ जाता है । मैं जाऊँगा, वहाँ जाऊँगा······फिर वापस नहीं आऊँगा, नहीं······।' झर-झर अश्रुजल झरने लगा, वह निर्वाक् हो गया ।

उसके सांनिध्यमें आनन्दकी अतिशयतासे मेरी भी चैतन्य-लोप-जैसी अवस्था हो गयी । किंतु मेरी वह अवस्था दीर्घ-कालतक नहीं रही । उस किशोर योगीकी प्रत्यक्षदर्शी शक्तिके लिये सब कुछ जीवन्त सत्यसे ओतप्रोत था । भला उसका इतना मर्मस्पर्शी वर्णन सुनकर भी कौन ऐसा पशु होगा जो वहाँ स्वयं जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी तीव्र लालसासे अभिभूत न हो जाय । मेरे मनमें उत्तरोत्तर लोभ बढ़ने लगा । मैं पुनः 'हरि-हरि' उच्चारण करने लगा । जैसे ही देखा कि उसकी अवस्था कुछ-कुछ बहिर्मुखी हो रही है, मैं बोल उठा, 'बाबाजी ! तुम्हारे-जैसा सौभाग्य सबको प्राप्त नहीं होता । मुझपर जरा दया करोगे ? मुझे भी कुछ दिखाओगे ?'

यह सुनकर उसे पूरा बाह्य ज्ञान हो गया, बोला—'आह ! मेरे दोस्त ! क्या मेरे लिये यह मुमकिन है ? मुझमें क्या ताकत है ? वहाँ तो चम्पा सखी ही तुम्हें ले जा सकती है । वही मेरी गुरु है, वही मेरी आँख है,······उसके बिना तो मैं अपने-आप किसी तरह भी नहीं जा सकूँगा ।'

इसी समय दूर चम्पाकी मूर्ति दिखायी दी । देखते ही वह किशोर 'अब जाऊँगा, देखूँगा, श्यामसुन्दर, राधका रानी······'कहता-कहता मानो स्थिर हो गया, उसके नेत्र स्थिर और विस्फारित हो गये, आगे कुछ न बोल सका, एकदम भावाविष्ट अवस्था हो गयी ।

इतनेमें चम्पा पास आ गयी । उसका रूप देखकर मैं स्तम्भित हो गया । यह तो वह व्रजनारी नहीं, जिसने मुझे यहाँ रहनेके लिये कहा था, वेषभूषा भी तो वह नहीं ? यह तो एक अपूर्व ही वेष था, अबतक किसीको भी ऐसी पोशाकमें नहीं देखा था । सब कुछ अत्यन्त पतला, इतना हल्का मानो उड़ रहा हो, स्थूल जरा भी न हो । उसकी अपूर्व गति एक मनोहर सौन्दर्यकी सृष्टि कर रही थी ।

बालकको स्पर्श करते ही वह उठ खड़ा हुआ । निर्वाक् चम्पा आगे-आगे चल रही थी और उसके पीछे-पीछे वैरागी किशोर। धीरे-धीरे मेरी आँखोंके सम्मुख ही वे दोनों अन्तर्धान हो गये। एक विलक्षण आच्छन्न भावसे जड़ीभूत होकर मैं बहुत देरतक वहीं बैठा रहा ।

दूसरे दिन संध्यासे कुछ पूर्व फिर वहाँ गया, जहाँ यमुना-तटपर तीन वृक्षोंके बीच त्रिकोण क्षेत्रमें उस किशोर वैरागीका आसन था । आज वह आसन शून्य था—वहाँ कोई न था । उसके बापको तो अब खबर देनेका कोई प्रश्न ही नहीं था । पहले दिनकी अपूर्व अलौकिक लीलाको ही स्मरण करता हुआ, आश्चर्यपूर्ण आनन्दकी लहरोंमें हिलोरें खाता हुआ वापस आ गया ।

युगल नृत्य

रसिक रसिकनी किसोर निरतत रँग भीने ।
गौर सुभग स्याम तनें नटवर बपु बेष बनें,
ठुमक ठुमक थेई थेई उघटत गति लीनें ॥
कोक संगीत सुघर गावत सुख सर्वोपर,
तान तिरप लेत प्यारी पहिरें पट झीनें ।
अधर दसन दुति प्रकास अलक झलक भ्रू बिलास,
तार सुरन चोरत चित नवल नेह नवीनें ॥
रीझि रवन मोहि रहे धाय चपल चरन गहे,
लये लाल ललना हँसि अंस बाहु दीनें ।
दासी नागरि नवेलि नागर मिलि करत केलि,
आनँद रस झेलि खेलि पूरन प्रेम प्रबीनें ॥

—श्रीनागरीदासजी

अष्टाक्षर महामन्त्रका माहात्म्य

(लेखक—प्रो० श्रीराधेश्यामजी रस्तोगी)

[अनुवादक—श्रीराजसरन रस्तोगी, प्राध्यापक, वाणिज्य-विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय]

वेद, श्रीमद्भागवत, गीता एवं ब्रह्मसूत्रका गहन अध्ययन करनेके पश्चात् श्रीवल्लभाचार्यजीने यह निश्चयात्मक मन्तव्य दिया कि 'श्रीकृष्णः शरणं मम' महामन्त्रका जप कलियुगकी समस्त आत्मिक कलुषताओंके विनाश करनेकी महौषधि है। वस्तुतः उनके उपदेशोंका तत्त्व हमें षोडश-ग्रन्थकी सुविख्यात कविता 'नवरत्न' की अन्तिम पंक्तियोंमें मिलता है, जिसमें वे कहते हैं कि 'जीवको श्रद्धासे युक्त होकर सम्पूर्ण मनसे इस मन्त्रका अनवरत उच्चारण करना चाहिये।'

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥

इस महामन्त्रपर विचार करनेके पूर्व धार्मिक सिद्धान्त-शृङ्खलामें जपके महत्त्वपर प्रकाश डालना आवश्यक है। हिंदुओंकी उपासना-पद्धतिमें साधारणतया एवं वैष्णवोंमें विशेषकर, जपका एक विशिष्ट स्थान है। समस्त धर्माचार्यों एवं धर्मगुरुओंमें इसके गोपनीय महत्त्वको स्वीकार ही नहीं, वरं इसका समर्थन भी किया है। उनका यह मत है कि 'जपसे मनुष्य आत्मिक शुद्धताको प्राप्त होता है और आत्मिक बन्धनसे उसकी अन्तिम मुक्ति विनिश्चित हो जाती है। गीतामें इसका रहस्ययुक्त माहात्म्य सुस्पष्ट है 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'। जप (भगवन्नामका सतत उच्चारण) में किसी प्रकारकी हिंसा अपेक्षित नहीं है। निरन्तर जपाभ्याससे ईश्वरका प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाता है। अतः जपयज्ञ, समस्त यज्ञोंमें उत्तम है और इसकी श्रेष्ठता प्रमाणित करनेके हेतु ही भगवान्ने इसे अपना स्वरूप बतलाया है।

जप यथार्थतः एक स्तुति है। स्तुतिकी परिभाषा विभिन्न प्रकारसे की गयी है। एक पाश्चात्त्य लेखकके अनुसार 'स्तुति' आत्माके अपने स्वामी ईश्वरके प्रति निष्कपट, सार्थक एवं प्रेमपूर्ण भावोंका अभिव्यक्तीकरण है। वह हृदयकी सर्वोत्कृष्ट अभिलाषाकी स्वतः अभिव्यञ्जना है—हृदयमें विकम्पित होनेवाले उस छिपे हुए अनलका प्रज्वलित होना है। स्तुतिके सम्बन्धमें विचार करते हुए आचार्य गोपालका यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है—

स्तुति न तो केवल मानसिक क्रिया है, न केवल बौद्धिक प्रयास अथवा स्मरणशक्तिका कार्य है, अपितु अपने स्वामीके संनिकट पहुँचनेके हेतु आत्माका उत्थान है। शारीरिक दुर्बलताओं, मानसिक विषमताओं, बौद्धिक व्यतिक्रम एवं आत्मिक वक्रताओंका मर्मस्पर्शी आभास, ईश्वरकी सर्वतोमुखी पूर्णताका, उसकी दीनोंका आर्तनाद सुननेकी एवं असहायोंका संरक्षण-भार लेनेकी तत्परताका तीव्र अन्तर्ज्ञान ही भगवत्-स्तुतिका कारण है। स्तुतिका माहात्म्य, हार्दिक उद्गारों अथवा मनकी कल्पनाशक्तिमें ही केवल निहित नहीं है, अपितु ईश्वरकी अनिर्वचनीय, कल्पनातीत लीलाओं एवं चमत्कारोंपर दृढ़ विश्वासमें है। स्तुतिमें, दीनता-प्रेरित आत्म-समर्पण, पश्चात्तापकी उग्रता एवं श्रद्धामें विश्वास अन्तर्निहित है। वह कोई भाषा-चातुर्य नहीं, अपितु गम्भीर उत्सुकता है; आश्रय-हीनताकी परिभाषा नहीं, वरं आश्रयकी परमावश्यकताका तीव्र अनुभव है।

यदि जप इतना महत्त्वपूर्ण है, तो यह प्रश्न उठता है कि भक्त किस मन्त्रका आश्रय ग्रहण करे। शुद्धाद्वैत-मत-प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्यजी—(जो कि ब्रह्मवादपर प्रवचन एवं विभिन्न दर्शन-शास्त्रके पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित करनेके कारण, अपने प्रतिद्वन्द्वियोंद्वारा भी सर्वश्रेष्ठ एवं अद्वितीय गुरु माने गये) ने बताया कि भगवत्-परायण व्यक्तियोंको अपनी निष्ठा श्रीकृष्णमें ही स्थापित करनी चाहिये; क्योंकि वे ही परं ब्रह्म हैं—परं ब्रह्म तु कृष्णो हि। सिद्धान्तमुक्तावलीमें वे स्पष्टरूपसे निश्चयपूर्वक यह घोषणा करते हैं—

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता॥

समस्त दर्शनशास्त्रोंका अध्ययन करनेके पश्चात् मेरा यह सुविनिश्चित सिद्धान्त है जिसका उद्घोष मैं असंदिग्ध शब्दोंमें करता हूँ। वह यह है कि मनुष्यको सदैव श्रीकृष्णकी ही सेवा करनी चाहिये, उसमें भी मानसी सेवा सबसे उत्तम है।

'अन्तःकरणप्रबोध'में उनका यह कथन है—

कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम्।

श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई भी देवता दोषोंसे रहित अर्थात् पूर्णानन्दस्वरूप नहीं है । 'कृष्णाश्रय'में वे बार-बार यह कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही समस्त जीवोंके संरक्षक हैं । उपर्युक्त श्लोकोंसे यह स्पष्ट है कि कृष्णोपासनाका सिद्धान्त—जिसका समर्थन श्रीवल्लभाचार्यजी दृढ़तापूर्वक करते हैं—कोई उनका कल्पनाप्रसूत सिद्धान्त नहीं है, परंतु धर्म-ग्रन्थों एवं दर्शन-शास्त्रोंके गहन अध्ययनका परिणाम है । अतः यह उचित ही होगा कि इस विषयका अध्ययन, सुविख्यात धर्म-ग्रन्थोंका आश्रय लेकर, तीन भागोंमें किया जाय । १-कृष्ण ही परब्रह्म हैं, २-उनके नामका माहात्म्य, ३-शरणागति ।

(१) श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं

(क) वेद—ऋग्वेदकी निम्न पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं ।

कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥
(४ । ७ । ९)

हम अपनेको कृष्ण रूप ! तुम्हारी शरणमें समर्पित करते हैं । रुद्रके रूपमें तुम त्रिलोक-संहारक हो एवं ज्ञानियोंके ज्ञानके मुख्य स्रोत हो । चलनेमें असमर्थ शृङ्खलाबद्ध देवकीके गर्भसे अवतार लेनेके पश्चात् तुमने तत्काल ही अपनेको उससे पृथक् कर लिया ।

(ख) गीता—श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए, गीतामें अर्जुनके निम्नवाक्यांश श्रीकृष्णको परब्रह्म स्वीकार करते हुए सारगर्भित हैं—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥
(१० । १२)

'तुम ही परब्रह्म हो, परम धाम हो, परम पवित्र हो, दिव्य शाश्वत पुरुष हो, देवताओंमें प्रथम हो, अजन्मा हो, सर्वव्यापी हो ।'

श्रीकृष्ण स्वयं अपने सम्बन्धमें कहते हैं—

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
(गीता ९ । १७)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय ।
(गीता ७ । ७)

'मैं इस जगत्का पिता हूँ, माता हूँ, धारक हूँ एवं पितामह हूँ । मेरे अतिरिक्त और मुझसे परे कोई भी वस्तु नहीं है ।'

अन्यत्र श्रीकृष्ण कहते हैं—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥
(गीता १४ । २७)

'मैं ही अमृत एवं अविनाशी ब्रह्मका, शाश्वत धर्मका एवं ऐकान्तिक सुखका आश्रय हूँ ।'

(ग) महाभारत—सत्य एवं पुण्यके सत्त्वस्वरूप महान् योद्धा एवं गुरु, पितामह भीष्म श्रीकृष्णके सम्बन्धमें कहते हैं—

एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः ।
एतदक्षरमव्यक्तमेतद् वै शाश्वतं महः ॥

'वे ही परम ब्रह्म हैं, परम यश हैं । वे ही अव्यक्त, अक्षर एवं शाश्वत तेज हैं ।'

भीष्मपर्वमें भीष्म उन समस्त ऋषियोंके संस्मरण प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने श्रीकृष्णके सम्बन्धमें कुछ कहा है—

१-नारद—भगवान् श्रीकृष्ण समस्त लोकोंके सृष्टि-कर्ता हैं, सर्वेश एवं समस्त देवताओं तथा सिद्धगणोंके परम स्वामी हैं ।

२-भृगु—वे देवताओंके भी देवता हैं और पुरातन विष्णु हैं ।

३-व्यास—वे देवताओंके भी देव हैं ।

४-सनत्कुमार—वे ही शाश्वत पुरुष हैं ।

(घ) श्रीमद्भागवत

१-श्रीवेदव्यासके अनुसार—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥
(श्रीमद्भा० १ । ३ । २८)

'विभिन्न अवतार परम ब्रह्मके अंशस्वरूप हैं, जिनका आविर्भाव समय-समयपर आसुरी तापसे पीड़ित लौकिक जीवोंको आनन्द प्रदान करनेके हेतु ही होता है । अन्य अवतार तो भगवान्‌के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परंतु श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं ।'

२-ब्रह्माजी श्रीकृष्णको इन मनोहारी शब्दोंमें सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥
(श्रीमद्भागवत १० । १४ । ३२)

'नन्दगोपद्वारा शासित उन व्रजवासियोंका परम अहोभाग्य है, सनातन पूर्ण ब्रह्म एवं परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण जिनके प्रिय सुहृद् हैं ।'

३–रुद्र अपनी श्रद्धाञ्जलि इन शब्दोंमें देते हैं—

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ६३ । ३४)

'आप वेदमन्त्रोंमें तात्पर्यके रूपसे छिपे हुए परम ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं। निर्मल अन्तःकरणवाले व्यक्ति आपको गगन-सदृश सर्वव्यापी एवं निर्विकार (निर्लेप) स्वरूपमें देखते हैं ।'

(य) अन्य शास्त्र—

१–पद्मपुराणके अनुसार—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

'कृष्' अथवा 'भू' धातु वस्तुतः एक ही हैं, जिनका अभिप्राय अस्तित्वसे है। 'ण'का अर्थ निर्वृति अर्थात् जटिलताओंसे रहित आनन्द है। अर्थात् अविनाशी एवं पूर्णानन्दरूप परम ब्रह्म ही श्रीकृष्णका वाच्यार्थ है। जहाँ सत् एवं आनन्द है, वहीं चेतना है।

२–ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार—

महाविराण्महाविष्णुस्त्वं तस्य जनको विभो ।

'हे कृष्ण ! तुम महान् विराट्रूप महाविष्णुके भी जन्मदाता हो, जो कि तुम्हारे ही अंश हैं ।'

३–ब्रह्मसंहिताके अनुसार—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

'श्रीकृष्ण ही, जो गोविन्दके नामसे विख्यात हैं, परमेश्वर हैं। वे सच्चिदानन्दघन हैं। वे अनादि हैं, समस्त सृष्टिके आदि हैं एवं समस्त कारणोंके प्रमुख एवं एकमात्र कारण हैं ।'

अन्यत्र उसी संहितामें यह कहा गया है—

रामादिमूर्त्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

'जो परम पुरुष जगत्में विविध अवतार ग्रहण करके रामादि विग्रहोंमें कला (अंश) रूपसे स्थित रहते हैं; किंतु श्रीकृष्णरूपमें तो वे स्वयं ही प्रकट हुए। उन आदिपुरुष श्रीगोविन्दको मैं नमस्कार करता हूँ ।'

इस ग्रन्थकी विलक्षणता अन्तिम सत्यको अत्यन्त संक्षेपमें अभिव्यक्त करनेमें निहित है। इस ग्रन्थके उपसंहारमें यह कथित है कि श्रीकृष्ण ही सत्, चित् एवं आनन्दके घनस्वरूप हैं। वे परम ब्रह्म हैं, शाश्वत हैं, सबके आदि हैं और समस्त कारणोंके कारण हैं।

४–चैतन्यचरितामृत—इसके लेखककी यह असंदिग्ध घोषणा है—

स्वयं भगवान् कृष्ण, कृष्ण परमतत्त्व ।
पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥

'कृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं, कृष्ण ही परम तत्त्व हैं। वे सर्वज्ञ पूर्णानन्द एवं महानतोंकी चरम सीमा हैं ।' अन्तमें उनका यह कथन है—

ईश्वर परम कृष्ण स्वयं भगवान् ।

'परम ब्रह्म कृष्ण ही हैं, कृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं ।'

५–आदिशंकराचार्यके अनुसार—

ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान्प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्
गोपान् वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णूनशेषांश्च यः ।
शम्भुर्यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते च मूर्तित्रयात्
कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा ॥

'भगवान् श्रीकृष्णको अपनी मायासे मोहित करनेके लिये जब ब्रह्माजी उनके बछड़ों तथा गोपबालकोंको चुराकर ले गये, तब श्रीकृष्णने उन्हें अपने अंदर अनेकों ब्रह्माण्डोंका तथा प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अनेक अद्भुत ब्रह्मदेवों तथा उन-उन ब्रह्माण्डोंके पालनकर्ता विष्णुओंका दर्शन कराया, साथ ही अपनेको अनेक गोपबालकों एवं बछड़ोंके रूपमें प्रकट कर दिया तथा गङ्गाजीके रूपमें स्थित जिनके चरणोदकको साक्षात् भगवान् शंकर अपने मस्तकपर धारण करते हैं,

वे श्रीकृष्ण ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवसे भिन्न कोई अविकारी सच्चिदानन्दघनमय नील ज्योति हैं।'

अद्वैतदर्शन-महारथी, परमहंस परिव्राजक श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीके शब्दोंमें ('अद्वैतसिद्धि' नामक ग्रन्थमें तथा गीतामें अङ्कित) भी यही समर्थन हमें प्राप्त होता है।

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
　　पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
　　कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

'जिनके करकमलोंमें वंशी सुशोभित है, जो नव-जलधर-वर्ण हैं। पीताम्बर धारण करनेवाले उन प्रभुके बिम्बफलके समान अरुण ओष्ठपुट हैं, ऐसे पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुख एवं कमलसदृश नेत्रोंवाले श्रीकृष्णसे बढ़कर मैं किसी भी तत्त्वको नहीं जानता।'

कृष्णके वास्तविक अर्थके लिये—जिसकी अभिव्यञ्जना विभिन्न स्रोतोंके द्वारा विभिन्न प्रकारसे हुई है—हमें 'नामकौमुदी'के निम्न श्लोकका अवलोकन करना होगा—

तमालश्यामलत्विषि　श्रीयशोदास्तनन्धये
　　कृष्णनाम्नो रूढिरिति　सर्वशास्त्रविनिर्णयः।

'सर्वशास्त्रोंद्वारा स्वीकृत एवं परम्परागत अर्थ श्रीकृष्णका यह है—तमाल वृक्षके समान श्यामल वर्णवाले यशोदानन्दन।'

उपर्युक्त उद्धरणोंसे यह निश्चयपूर्वक सिद्ध होता है कि—

१—श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं, जैसा कि श्रुति कहती है 'एकमेवाद्वितीयम्' अर्थात् जिसका कोई द्वितीय न हो।

२—श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं, परमानन्द हैं, मायाके अधिपति हैं और महत्तम भगवत्-आविर्भावोंसे भी महान् हैं।

३—श्रीकृष्ण ही सबके आदि हैं, सब कारणोंके कारण हैं।

४—श्रीकृष्ण ही कूटस्थ ब्रह्मके साकार स्वरूप हैं। महाविष्णु भी उनके अंश हैं।

५—एक ही समयमें उनमें विरोधी लक्षण पाये जाते हैं। कोई भी वस्तु उनसे सूक्ष्म नहीं हो सकती और न बृहत् ही। 'अणोरणीयान् महतो महीयान्'—सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म एवं विशालसे भी अति विशाल—उन दोनों विरोधी गुणोंके मुख्य आधार हैं।

६—उनमें भगवान्‌के षट् गुण चरम मात्रामें हैं—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, वैराग्य, ज्ञान।

७—श्रीकृष्ण भगवदवतार नहीं हैं, वरं स्वयं भगवान् हैं। वे पूर्णावतार हैं, निर्गुण ब्रह्मके सगुण स्वरूप हैं। वे इस भूतलपर ससीम होकर अवतरित हुए और वास्तविक कर्मक्षेत्रमें उन्होंने अपूर्व एवं विलक्षण चमत्कारों (जिसका प्रदर्शन किसी भी अन्य अवतारने नहीं किया था) का प्रदर्शन किया।

८—वे समस्त देवताओं—जैसे ब्रह्मा एवं रुद्रद्वारा पूजित हैं।

(२) कृष्ण-नाम-स्मरणका माहात्म्य

श्रीमद्भागवत, गीता एवं अन्य ग्रन्थोंमें उनके नाम-स्मरणका अद्भुत माहात्म्य स्पष्टरूपसे लक्षित है।

श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें यह लिखित है—

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव　सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥
(६।२।१०)

'भगवन्नामके उच्चारणद्वारा सभी वर्गोंके पापियोंके पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है; क्योंकि इसके द्वारा भगवान्‌में बुद्धि स्थिर हो जाती है।'

उसी स्कन्धमें यह भी कहा गया है—

अज्ञानादथवा　ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम　यत्।
संकीर्तितमघं　पुंसो　दहेदेधो　यथानलः॥
(श्रीमद्भागवत ६।२।१८)

'ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानवश ईश्वरका कोई भी नाम ले लेनेसे मनुष्यके पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे समस्त स्थितियोंमें ईंधन अग्निमें स्वाहा हो जाता है।'

द्वादश स्कन्धमें भी ऐसी ही उक्ति है—

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम　इत्युच्चैर्मुच्यते　सर्वपातकात्॥
(श्रीमद्भागवत १२।१२।४६)

'गिरा हुआ, लड़खड़ाता, दुःखी एवं छींकता हुआ मनुष्य भी विवशताकी स्थितिमें यदि उच्च स्वरसे 'हरिको नमस्कार है' कहता है तो वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

गीताके नवें अध्यायमें श्रीकृष्ण कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥

(९ । ३४)

'अपना मन मुझमें स्थित कर, मेरा भक्त हो, मेरी उपासना कर, मुझे नमस्कार कर ।'

नारदपुराण—

हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय ।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः ॥

'जो मनुष्य नित्य हरि, केशव, गोविन्द, वासुदेव एवं अन्य भगवन्नामोंका उच्चारण करते हैं, उनको कलियुग हानि नहीं पहुँचा सकता ।'

स्वपन् भुञ्जन् व्रजंस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठंश्च वदंस्तथा ।
चिन्तयेद्यो हरेर्नाम तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

'जो स्वप्नमें, चलते समय, भोजन करते समय, खड़े रहते समय, वार्तालाप करते समय, हरिके नामका चिन्तन करता है, मैं उसको नित्य नमस्कार करता हूँ ।'

महर्षि जैमिनिका कथन है—

हृदि भावयतां भक्त्या भगवन्तमधोक्षजम् ।
यः कोऽपि दैहिको दोषो जातमात्रो विनश्यति ॥

'भक्तिपूर्वक हृदयमें भगवान्का ध्यान करनेवाले मनुष्य यदि किञ्चिन्मात्र भी दैहिक दोषोंके लक्ष्य बन जाते हैं, तो वे दोष उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाते हैं ।'

महात्मा भीष्मके शब्दोंमें—

कृष्ण कृष्णेति जपतां न भवो नाशुभा मतिः ।
प्रयान्ति मानवास्ते तु तत्पदं तमसः परम् ॥

'श्रीकृष्णके नामका जप करनेवाले पुनः इस संसारमें नहीं आते और न उनके मन अशुभ विचारोंसे ग्रसित रहते हैं । वे अविद्यारूप अन्धकारसे परे उस परम पदको प्राप्त होते हैं ।'

(३) शरणागति

पूर्णरूपेण आत्मसमर्पणकी भावनासे—जिसका चरम उद्देश्य विश्वात्मा, अर्थात् प्रत्येक जीवमें प्रतिष्ठित आत्मामें अन्तर्निहित आनन्दकी प्राप्ति है—गीताके उपदेश ओतप्रोत हैं । गीताका अन्तिम निर्देश सब प्रकारसे आत्म-समर्पण ही है । समस्त कार्योंका विनियोग इष्टमें ही होता है—वह इष्ट जो समस्त जीवोंके हृदयमें स्थित होकर उन कर्मोंको नियन्त्रित करता है । इस प्रकारके समर्पणसे जीव समस्त पापों एवं दुःखोंसे मुक्त हो जाता है और शाश्वत आनन्दसे युक्त उस परम शान्तिको प्राप्त होता है ।

गीताके अठारहवें अध्यायमें ईश्वरकी शरणमें जानेका स्पष्ट आदेश है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(१८ । ६२)

'हे भारत ! सब प्रकारसे उसी ईश्वरकी शरणमें जा; क्योंकि उसीकी अनुकम्पासे तुझे परम शान्ति एवं सनातन परम धामकी प्राप्ति होगी ।'

पुनः उसी अध्यायमें यह आदेश है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'मुझमें चित्तको स्थिर कर, मेरा भक्त हो, मेरी उपासना कर, समस्त कर्म मुझमें समर्पित कर, मेरेको सर्वस्व समझते हुए अपने अहंभावका सर्वनाश कर । इसके पश्चात् तू मुझको ही प्राप्त होगा । यह मैं तुझसे सत्य कहता हूँ, क्योंकि तू मेरा प्रिय है ।

'समस्त आश्रयोंका परित्याग करके मेरी शरणमें आ, शोक मत कर, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा ।'

विभिन्न ग्रन्थोंके उपर्युक्त उद्धरणोंसे निम्नलिखित निष्कर्षोंपर पहुँचते हैं—

१—श्रीकृष्ण ही सनातन परब्रह्म, सबके आदि, समस्त कारणोंके कारण, समस्त देवताओंके द्वारा पूजित हैं । अतः वे ही भगवान् हैं, हृदय और आत्माद्वारा उन्हींकी उपासना होनी चाहिये ।

२—उनके नामके अनवरत उच्चारणसे जीव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है । सबसे निन्द्य पापी भी इस मार्गका अनुगमन करके अपनेको लाभान्वित कर सकता है ।

३—पूर्ण आत्मसमर्पण होना चाहिये । स्त्री एवं शूद्र भी इस मार्गकी शरण ले सकते हैं ।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

(गीता ९ । ३२)

'हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य और शूद्रादि तथा पापयोनिवाले भी जो कोई हों, वे भी मेरे शरण होकर परम गतिको ही प्राप्त होते हैं ।'

अतः शुद्धाद्वैत, ब्रह्मवाद, पुष्टि-भक्ति-मार्ग प्रवर्तकाचार्य श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यचरणोंने श्रीकृष्णकी उपासना एवं पूर्ण आत्मसमर्पणको अत्यधिक महत्त्व दिया है । श्रीमद्भागवत एवं गीता ही उनके दर्शनके मुख्य स्रोत थे । मानवसमाजकी दृष्टि उन्होंने पुनः उन सिद्धान्तोंपर केन्द्रित की, जो कि समयकी गतिके साथ विस्मृत हो चुके थे और जिनको अन्य मत-मतान्तरोंकी शिक्षाओंने आवृत कर रक्खा था । स्त्री एवं शूद्रों-सहित—जिनको अतीतके धर्माचार्योंने अनेक प्रतिबन्धोंसे जकड़ रक्खा था—समस्त मानव-समाजको मुक्तिका सहज मार्ग दिखानेका श्रेय श्रीवल्लभाचार्यजीको ही है; क्योंकि श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं (**परं ब्रह्म तु कृष्णो हि**) इसलिये हमें चाहिये कि हम उन्हींकी शरण लें और उन्हींके प्रति अपनेको पूर्णरूपसे समर्पित कर दें । इस लक्ष्यकी प्राप्तिके हेतु ही उन्होंने अपने ग्रन्थोंसे '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' के महामन्त्रका चयन करके उसकी पृथक् प्रतिष्ठा की । यह मन्त्र पुष्टि-मार्गकी आधारशिला है । इस महामन्त्रमें दो बातोंका सुन्दर समन्वय है । १–श्रीकृष्णका नाम, जो कि स्वयं भगवान् हैं । २–उनके प्रति जीवका पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण ।

मन्त्र वह है, जिसका निरन्तर स्मरण एवं विचार करनेसे मनुष्य आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाता है । उसकी प्रकृतिका पूर्णरूपेण परिवर्तन हो जाता है और वह आत्माकी एकता और सर्वव्यापकतामें अपनेको विस्मृत कर बैठता है । मन्त्र शब्द 'मन्' धातुसे उद्भूत है । इस शब्दके प्रथम पद 'मन्' का तात्पर्य विचार करनेसे है और 'त्र' का अर्थ संरक्षण करनेसे है अर्थात् सांसारिक बन्धन अथवा क्षणिक जीवनसे मुक्तिसे है । जिस प्रकार वायुसे अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार मन्त्रकी शक्तिसे साधककी साधना और शक्तिमती हो जाती है । मन्त्र देदीप्यमान तेजका पुञ्ज है, जो कि अलौकिक शक्तियोंको जाग्रत् करता है । इस मन्त्रका सतत उच्चारण सृजनात्मक शक्तिका संचार और पोषण करता है और आध्यात्मिक जीवनके प्रत्येक पहलूको शान्तिमय बनाता है । यदि जीव एकाग्रचित्तसे अर्थगाम्भीर्यपर बुद्धिको केन्द्रीभूत करते हुए इस मन्त्रका उच्चारण करे, तो उसे भगवत्सांनिध्यका आभास सहज और शीघ्र ही होने लगेगा ।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके समयसे अबतक भी वैष्णवोंको दीक्षा इसी मन्त्रसे दी जाती है । इसे महामन्त्र कहते हैं; क्योंकि—

१—यह गीता और श्रीमद्भागवतकी शिक्षाओंमें ही केन्द्रित है और श्रीकृष्णने स्वयं ही इसका आदेश किया है ।

२—यह भक्तको परं ब्रह्मकी भक्तिके चरम उद्देश्यकी ओर ले जाता है, जिससे कि चरम फलकी प्राप्ति होती है । दूसरी ओर देवताओंकी उपासनाका लाभ सीमित ही होता है ।

३—यह हृदयको शुद्ध करता है और पापोंका संहार करता है ।

४—श्रीमद्भागवतमें वर्णित नवधा भक्तिको प्राप्त करानेमें यह सहायक है ।

५—यह भक्तिकी प्रत्येक आवश्यकता एवं इच्छाको पूरा करता है ।

इस महामन्त्रके प्रत्येक अक्षरका अपना अलग महत्त्व है, जो निम्न प्रकार है—

श्रीः–यह धन एवं समृद्धि प्रदान करता है ।

कृः–यह पापोंको भस्म कर देता है ।

ष्णः–यह ऐहिक एवं पारलौकिक तापोंका विनाश करता है।

शः–यह आवागमनके चक्रसे मुक्त करता है ।

रः–यह भगवत्-ज्ञान कराता है ।

णः–यह भगवद्भक्तिको दृढ़ करता है ।

मः–भगवत्-सेवाके विषयमें बतानेवाले गुरुके प्रति प्रेम-को प्रगाढ़ करता है ।

मः–यह भगवत्-सांनिध्य कराता है ।

६–जातीय धार्मिक अथवा वंशविषयक प्रतिबन्धरहित इस मन्त्रका उच्चारण किसी भी समय और किसी भी परिस्थितिमें किया जा सकता है ।

इस महामन्त्रके तीन रूप हैंः—

आधिभौतिक—मन्त्रके अक्षर आधिभौतिक हैं ।

आध्यात्मिक—श्रीकृष्णलीलावर्णित श्रीमद्भागवत कृष्ण-रूप है, और सुबोधिनी (जो कि वल्लभाचार्यद्वारा लिखित भाष्य है और भागवतलीलाका गूढ़ अर्थ प्रकाशित करती है) राधा-रूप है । भागवतसे आनन्दकी प्राप्ति होती है, सुबोधिनीसे परमानन्दकी और दोनोंसे पूर्णानन्दकी ।

आधिदैविक—कृष्ण और राधाका रसात्मक स्वरूप (अनिर्वचनीय तेज एवं सौन्दर्ययुक्त व्रजलीलाधामके प्रिय और प्रियतम, जिनके दर्शनसे भक्तको असीमित आनन्दकी प्राप्ति होती है)।

यह स्मरणीय है कि जप करते समय हमें अपनी दुर्बलताओंका निरन्तर आभास रहे—मनको हतोत्साहित अथवा आत्माको निर्बल करनेके हेतु नहीं, अपितु दैवी सहायतासे उनपर विजय प्राप्त करनेके लिये। इस अभ्यासद्वारा हम आत्म-निरीक्षणके कार्यमें निपुण हो जाते हैं और इससे हमें अपने पापोंकी क्षुद्रता एवं हृदयका छल प्रत्यक्ष हो जाता है। सतत अभ्याससे निवेदककी आत्मा बलवती और लगन स्फूर्तिमती हो जाती है।

स्तुतिकी प्रवृत्तिका सृजन एवं पोषण अधिक महत्त्वपूर्ण है। उचित प्रकृति एवं चित्तवृत्तिका होना आवश्यक है। अहंकारयुक्त प्रकृति एवं विनम्र प्रार्थनाका संयोग हास्यास्पद ही होगा। प्रार्थना आरम्भ होनेके पूर्व चित्तवृत्तिका अनुकूल होना आवश्यक है। हमें अपना समस्त जीवन, उसके प्रत्येक पहलूको पावन बनाना होगा। हमें ईश्वरको अपना एकमात्र संरक्षक एवं आश्रय समझना चाहिये और हमारे जीवनकी प्रत्येक क्रियाका सम्पर्क उससे होना चाहिये। स्तुति एवं कर्ममें सामञ्जस्य और भक्ति एवं व्यवहारमें संतुलन होना आवश्यक है। हमारा जीवन त्यागमय होना चाहिये। केवल जपके समय ही हमें श्रद्धायुक्त नहीं होना चाहिये। वरं जपका प्रभाव दिवसके प्रत्येक भाग, प्रत्येक कार्य एवं चित्तकी प्रत्येक वृत्तिमें व्याप्त होना चाहिये। ईश्वर सदैव हमारे मध्यमें है—इस भावनाको सदैव जागरूक रखना चाहिये।

यहाँपर यह कहना अनुचित न होगा कि इस महामन्त्रका प्रयोग जप और कीर्तन दोनोंके लिये समानरूपसे हो सकता है। जप अकेले और एकान्तमें होता है, परंतु जब मन्त्र अकेले अथवा भक्तोंके समुदायमें ऊँचे स्वरमें वाद्य यन्त्रोंके साथ अथवा यों ही कहा जाता है, तब उसे कीर्तन कहते हैं। उपासनापद्धतिमें कीर्तनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भावनाका अतिरेक, असीमित प्रेम और किसी अन्य उद्देश्यका न होना कीर्तनके लिये आवश्यक है। कृपाके सदृश इसका लाभ भी द्विपक्षी है। कीर्तन करनेवालों और सुननेवालों—दोनोंको यह पवित्र करता है।

कीर्तनका महत्त्व श्रीमद्भागवतमें सुस्पष्ट है—

> कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
> कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
> (श्रीमद्भागवत १२। ३। ५१)

'हे परीक्षित्! दोषोंकी निधि कलियुगमें एक महान् गुण है कि श्रीकृष्णके नाम और गुणका गान करनेसे मनुष्य सब प्रकारकी आसक्तिसे मुक्त हो जाता है और परम ब्रह्मको प्राप्त होता है।'

कीर्तनसे किस प्रकार मनकी शुद्धि होती है, इसका वर्णन श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार है—

> प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
> धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥
> (२। ८। ५)

'श्रोत्रपुटोंद्वारा भक्तोंके हृदय-कमलमें पहुँचकर श्रीकृष्ण उसकी समस्त कलुषताओंको दूर कर देते हैं—ठीक उसी प्रकार जैसे शरद् ऋतु सरिताओंके सलिलको निर्मल कर देती है।'

अतः श्रीहरिरायजी—महाप्रभुजीके एक सुविख्यात वंशज असंदिग्ध शब्दोंमें यह उद्घोष करते हैं—

> अष्टाक्षरमहामन्त्रकीर्तनेन विशेषतः।

'इस महामन्त्रका जप विशेषरूपसे होना चाहिये।'

उपसंहारमें हम यह कह सकते हैं कि इस महामन्त्रका प्रभाव अन्ततोगत्वा अन्य मन्त्रोंसे कहीं अधिक है; क्योंकि परम ब्रह्मकी उपासना चरम फलप्रदायिनी होती है। गीताके नवम अध्यायमें यह कहा गया है—

> यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
> भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥
> (९। २५)

'देवताओंकी उपासना करनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझको प्राप्त होते हैं।'

डा० राधाकृष्णन् उपर्युक्त श्लोकपर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं—

प्रगति एवं विकासकी विभिन्न अवस्थाओंमें तेजोमय देवता, विशुद्ध मृतात्माएँ मनुष्योंद्वारा पूजी जाती हैं। परंतु ये सब परम ब्रह्मके सीमित स्वरूप हैं और प्रगतिशील जीवोंको शान्ति देनेमें वह असमर्थ है, जो बुद्धिग्राह्य नहीं है।

उपासनाका अन्तिम परिणाम उपास्य-स्वरूपकी प्राप्ति है और ये सीमित स्वरूप सीमित फल ही दे सकते हैं। सभी देवताओंकी भक्ति इस प्रकार अपने संदर्भमें चरम फल प्रदान करनेमें समर्थ है। छोटे देवताओंकी भक्तिका परिणाम सीमित ही होता है और परम ब्रह्मकी भक्ति चरम फलको प्रदान कराती है। सब प्रकारकी धर्मयुक्त भक्ति अन्ततोगत्वा परम ब्रह्मकी ही खोज है।

श्रीविट्ठलेश प्रभुका यह निष्कर्ष इस महामन्त्रके सम्बन्धमें उचित ही है—

आनन्दं परमानन्दं सायुज्यं हरिवल्लभम्।
यः पठेच्छ्रीकृष्णमन्त्रं सर्वज्वरविनाशनम्॥
तं हि दृष्ट्वा त्रयो लोकाः पूताः स्युः किमु मानवाः।
मध्ये च सर्वमन्त्राणां मन्त्रराजोत्तमोत्तमः॥

'यह मन्त्र सब प्रकारके तापोंका नाश करता है और जो भी व्यक्ति इस मन्त्रका जाप करता है, उसे आनन्द, परमानन्द, भगवत्-सांनिध्य और हरिका प्रेम उपलब्ध होता है। इस मन्त्रका जाप करनेवाले मनुष्योंके दर्शनसे तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं। समस्त मन्त्रोंमें यह उत्तम है, सर्वश्रेष्ठ है। वस्तुतः यह वेद, पुराण, गीता और श्रीमद्भागवतका सार है।

जीवनशुद्धिका राजमार्ग—अपने दोषोंका स्वीकार एवं संशोधन

(लेखक—श्रीअगरचंदजी नाहटा)

ऐसा कौन मनुष्य है, जो अपने जीवनमें अपराध या भूल नहीं करता। मानवकी इस कमजोरीको ही लक्ष्य करके कहा गया है कि 'मानवमात्र ही भूलका पात्र है।' भूल या अपराध अनेक कारणोंसे होते हैं, जिनमें असावधानी, स्मृति-दोष, स्वार्थादि प्रधान कारण हैं। सबसे पहले तो हमारा कर्तव्य है कि त्रुटियों और पापोंके होनेके कारणोंपर गम्भीरतासे विचारकर यथासम्भव उन कारणोंसे ही बचते रहें। फिर भी जो संस्कारवश या असावधानी आदिसे त्रुटियाँ हो जायँ या जीवन-धारणके लिये जिन हिंसादि पापोंका करना अनिवार्य-सा प्रतीत हो, उनको अपनी कमजोरी स्वीकार करते रहें। तभी उन दोषोंमें कमी होगी तथा उनमें संशोधन और शुद्धि होनेका अवकाश रहेगा। यदि गलती करके उसे गलतीके रूपमें स्वीकार नहीं किया जायगा तो उसके संशोधन करनेका प्रश्न भी नहीं आयेगा। गलतियोंपर गलतियाँ करते चले जायँ तो अन्तमें उनसे ऐसे अभ्यस्त हो जायँगे कि फिर चाहनेपर भी उनसे छूट नहीं सकेंगे। इसलिये जीवनशुद्धिका राजमार्ग यही है कि दोष होनेके कारणोंसे यथासम्भव बचें। जिन दोषों-से नहीं बच सकें, उनके लिये मनमें खेद और पश्चात्ताप हो तथा अपनी कमजोरी समझकर उनकी शुद्धिके लिये विचार एवं प्रयत्न हो।

दोष करते रहना, उनसे छुटकारा नहीं पा सकना, जिस प्रकार मनुष्यकी एक कमजोरी है, उसी प्रकार दोष करके उसे स्वीकार करनेमें संकोच करना भी एक बड़ी कमजोरी है। कोई काम हमारे हाथसे बिगड़ जाता है और उसे हम अपना दोष जान भी लेते हैं, फिर भी साधारणतया हम उसे स्वीकार करनेको तैयार नहीं होते। कभी-कभी तो मनुष्य अपना दोष दूसरोंके मत्थे मँढ़नेको तैयार होता है। 'मैं क्या करूँ? अमुकने ऐसा कर दिया या उसके कारण ऐसा हो गया।' या 'यह गलती मेरे द्वारा नहीं हुई, अमुकके द्वारा हुई है' ऐसा कह दिया जाता है। अर्थात् उसे छिपानेके लिये बड़े-बड़े प्रयत्न किये जाते हैं। पहले तो दूसरोंको अपनी भूल तथा अपराधका पता ही न चले, ऐसा प्रयत्न किया जाता है। फिर जब भूल ही पकड़ी जाती है या दूसरोंके द्वारा उसका दोष बतला दिया जाता है तब टाल-मटोल की जाती है। दोष स्वीकार नहीं किया जाता। इस बचावके प्रयत्नसे एवं दूसरोंपर दोषारोपण करनेकी प्रवृत्तिसे मनुष्यकी दूषित वृत्ति बढ़ती ही जाती है और उसके कम होनेकी आशा ही नहीं रह जाती।

आजतक जितने भी मनुष्योंने उन्नति की है, अपना दोष समझ उसे स्वीकार करके शुद्धि करते हुए ही की है। किसी कारणवश यदि हम पापोंसे बच नहीं पाते, पर यह तो मानें कि यह ठीक तो नहीं है, पाप है। गलती तो मेरेसे हो ही गयी। यह स्वीकार तो अवश्य ही करना चाहिये, तभी उनसे बचना हो सकेगा। सरकारी कानूनोंमें देखते हैं कि गलती स्वीकार करनेवालेके बड़े-बड़े अपराधोंकी सजा भी कम हो जाती है। यह भी हम देखते हैं कि बहुत बार

अपराध स्वीकार करनेपर सजा छूट भी जाती है, अथवा उसका हलका-सा दण्ड ही मिलकर रह जाता है। आपसी व्यवहारमें तो स्वीकार करनेपर दोष क्षमा ही कर दिया जाता है; क्योंकि जो कुछ अनुचित हो गया, वह आवेश एवं असावधानीसे हुआ। अतः उसका परिताप होगा और स्वीकार करने मात्रसे ही उसे मानसिक दण्ड तो मिल ही गया। ऐसे अपराधीका, भविष्यमें वैसा अपराध न हो, यह लक्ष्य रहेगा ही। हमेशा उसके लिये उसे खेद रहेगा। हार्दिक पश्चात्ताप एवं प्रायश्चित्तसे पाप तत्काल तथा सहजमें ही धुल जाते हैं। अपनी भूलें स्वीकार न करना मनुष्यके मनकी कमजोरी है। अन्यथा बहुत साधारणसे दोषोंको स्वीकार करनेसे उसे कुछ नुकसान भी नहीं होता, उलटा उसकी सच्चाईका अच्छा प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ—किसी व्यक्तिके हाथसे घरकी कोई वस्तु—काँच या मिट्टी आदिकी उठाते, रखते या और कोई काम करते समय असावधानीवश टूट-फूट गयी हो तो यदि वह स्वयं दूसरेके देखने तथा कहनेके पहले ही कह देता है कि 'ओह! क्या करूँ, यह चीज मेरे हाथसे अमुक काम करते समय टूट गयी, मुझे अपनी असावधानीके लिये बहुत खेद है।' तो उसका मालिक या घरवाले प्रायः यही कहकर टाल देंगे कि 'खैर! हमारे हाथसे भी तो फूट जाती है या फूट सकती थी, कोई बात नहीं।' स्वीकारोक्तिसे उसके प्रति लोगोंका आदर तथा सहानुभूतिका भाव बढ़ेगा कि बेचारेसे गलती हो गयी, पर उसने अपने-आप भूल स्वीकार कर ली। इसका उसे खेद है तो वह भविष्यमें ख्याल रक्खेगा ही। ऐसे आदमी थोड़े ही मिलते हैं जो अपने अपराध झटसे प्रकाशित कर दें। प्रकाशित कर देनेपर, अधिक-से-अधिक मालिक यही तो कहेगा कि 'ध्यान रखना चाहिये था। देखो, यह मेरे बड़े कामकी चीज थी, इसके बिना मुझे बड़ी असुविधा होगी। भविष्यमें ध्यान रखना।' इससे भी अधिक कोई दण्ड देगा तो उसके पैसे ही भरा लेगा या दो कड़ी बातें कहकर नीचा दिखायेगा; पर इससे भावी जीवनमें लाभ कितना अधिक होगा, इसपर विचार करनेपर इस भूल स्वीकार करनेवाली महत्ताका भलीभाँति पता चल जायगा। यह दण्ड जीवनभर उसे खलता रहेगा, जिसके कारण ऐसी गलतियाँ होनी रुक जायँगी। अनेक अनर्थ जो स्वीकार न करनेसे सम्भव थे, उन सबसे वह बच जायगा तो यह भी कितनी बड़ी बात है। जीवनके लिये यह बड़े महत्त्वका सबक होगा।

इतना बड़ा लाभ होनेपर भी मनुष्य दोष स्वीकार करनेको तैयार क्यों नहीं होता, सकुचाता क्यों है? इसपर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है, स्वीकार न करनेका पहला कारण तो यह है कि वह जानता है कि इससे मेरा अपमान होगा या नीचा देखना पड़ेगा, अपशब्द सुनने पड़ेंगे या नुकसान होगा, दण्ड मिलेगा। अर्थात् इससे उसके 'अहं' को ठेस लगती है। दूसरोंकी दृष्टिमें वह हीन नहीं बनना चाहता। समाजकी बदनामीसे भय खाता है। उसे अपनी प्रतिष्ठा, महत्त्वके घटनेका भय रहता है। कभी-कभी वह अपने दोषोंको छिपाकर बहादुरीका कार्य किया—ऐसा भी अनुभव करता है। टूटी-फूटी चीजोंको ही लीजिये, वह उन्हें ऐसे ढंगसे जोड़कर रख देगा कि सहजमें उसका दोष पकड़ा ही न जा सके। दूसरा उसे छूयेगा तब वह गिर पड़ेगी; अतः दोषी वह दूसरा बन जाय। इस करतूतमें वह अपनी होशियारी मानता है, मन-ही-मन प्रसन्न होता है, फूला नहीं समाता; पर वास्तवमें तो यह चोरी और उल्टी सीनाजोरी हुई। इससे दोष-वृत्तिको बढ़ावा मिलता है। यह प्रवृत्ति बहुत हीन है। भावी जीवनपर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, अतः यह परित्याज्य है।

भयको दूर और कम करनेका एक चमत्कारी मन्त्र है कि उसके बड़े-से-बड़े होनेवाले दुष्परिणामोंको पहले ही सोच लिया जाय। तब छोटे दुष्परिणामोंसे वह घबरा नहीं जायगा, उन्हें साधारण-सा समझेगा। मान लीजिये कि एक व्यक्तिने किसीको गाली दी। उसका परिणाम साधारणतया सामनेवालेका भी गाली देना होता है। उसके लिये तो तैयारी पहलेसे ही होती है, अतः गाली देनेका भय नहीं होता है। उससे बढ़कर यदि सामनेवालेने मारपीट कर दी तो वह उसे सहज तथा सम्भव समझकर उद्विग्न नहीं होगा, अथवा सामनेवाला उसका समाज या सरकारसे (सुविचार माँगकर) उसे सामाजिक या राजकीय दण्ड दिलवा सकता है। बात बढ़ गयी तो उसके धन और शरीरको भी नुकसान पहुँच सकता है। यहाँतक कि यदि पहलेसे ही मनमें वह तैयारी कर लेगा तो फिर सामाजिक एवं राजकीय दण्डोंका भी उसे भय नहीं रहेगा।

अपराध स्वीकार करनेमें जो भय रहता है, उसकी अपेक्षा अपराध नहीं स्वीकार करनेके दुष्परिणामपर गहराईसे सोच लिया जाय तो भय नहीं रहेगा। स्वीकार करनेसे जो अपरिमित लाभ होनेवाला है, उस ओर गम्भीरतासे लक्ष्य किया जाय तो दोनोंके लाभालाभकी तुलना करनेपर जब

स्वीकार करनेवालेके लाभका पलड़ा भारी प्रतीत होगा तो मन स्वयं उसके लिये तैयार हो जायगा।

अपराध साधारण अथवा बड़े दोनों प्रकारके होते हैं और उन्हें साधारण व्यक्तिसे लगाकर बड़े-से-बड़े पुरुष भी करते रहते हैं। कभी-कभी तो जिस व्यक्तिसे ऐसे भयंकर अपराध होनेकी सम्भावना ही नहीं होती, उससे वे किसी कारणवश हो जाते हैं। पर क्वचित् दोष हो जानेवालेको पश्चात्ताप बहुत अधिक होता है। जितना भी वह उच्च स्तरका व्यक्ति होगा एवं अपराध उससे जितना ही निम्न स्तरका होगा, उसे मानसिक कष्ट या भय उतना ही अधिक होगा। व्यक्तिकी स्थिति, दोष करनेके कारण आदिपर विचार करके ही दण्ड दिया जाता है। अतः अपराधोंकी शुद्धिके लिये भी अनेक प्रकार होते हैं। जैसे एक व्यक्तिसे साधारण गलती हो जाती है, तो यदि वह स्वगत हुई तो अपने मनमें दोष स्वीकार करनेसे ही उसका परिमार्जन हो जायगा। यदि वह गलती दूसरोंको भी नुकसान पहुँचानेवाली है तो उससे उस दोषके लिये क्षमा माँग लेना आवश्यक हो जाता है। केवल मनमें ही स्वीकार करनेसे वह दोष शुद्ध नहीं होगा। इसी प्रकार कई दोषोंकी शुद्धि मनके पश्चात्तापसे ही, कइयोंकी शुद्धि वचनद्वारा प्रकाशित करनेपर एवं पश्चात्ताप करनेसे हो जाती है। और बहुत बड़े दोषोंकी शुद्धिके लिये उसके प्रायश्चित्तके रूपमें कठिन शारीरिक दण्ड भी आवश्यक होता है।

इसी प्रकार कई दोष, जिनसे वे सम्बन्धित होते हैं, उन्हींके सामने स्वीकार करनेसे उनका परिष्कार होता है। उससे बड़े दोषके लिये अधिक व्यक्तियोंके या समाजके समक्ष उपस्थित होकर अथवा बड़े आदमियोंके सम्मुख अपना अपराध स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है। धर्मशास्त्रोंमें भी देव, गुरु या संघके सम्मुख दोष स्वीकार करनेसे पापशुद्धि मानी गयी है। प्रत्येक मानवका कर्तव्य है कि वह रातके किये गये पापोंको प्रातःकाल उठकर विचारे एवं दिनमें किये गये पापोंको संध्यासमय चिन्तन कर उनको वचनद्वारा देव, गुरु या संघके सम्मुख स्वीकार-रूप पश्चात्ताप करते हुए उसके लिये खेद प्रकट करे। बड़े पापोंके लिये प्रायश्चित्त लेकर आत्मशुद्धि करे। जीवनशुद्धिकी इस क्रियाको जैनधर्ममें बड़ा महत्त्व दिया जाता है। उस क्रियाकी संज्ञा है—प्रतिक्रमण, यानी पापोंसे प्रत्यावर्तन—(पीछे हटना)। यह उभयकालकी आवश्यकीय क्रिया बतायी गयी है। अपने दोषोंकी शुद्धि स्वनिन्दा, गर्हा, प्रतिक्रमण तथा क्षमापनाद्वारा करनेका अभ्यास करना चाहिये। जब भी कभी कोई गलती आपके ध्यानमें आवे, तत्काल स्वीकारकर पश्चात्ताप करना चाहिये एवं भविष्यमें वह न हो, इसके लिये दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये। इससे निश्चित आत्मशुद्धि होगी।

कौन कैसा मनुष्य है ?

उत्तम वह, जो पर-दोषोंको अपने गुण देकर ढकता।
मध्यम वह, जो पर-दोषोंको सहन सहज ही कर सकता।
अधम मनुज, जो पर-दोषोंको सहन नहीं है कर पाता।
नीच मनुज, जो पर-दोषोंको बढ़ा-बढ़ाकर है गाता।
सबसे नीच, स्वयं गढ़-गढ़कर पर-दोषोंको बतलाता॥ १॥

उत्तम वह, जो अपकारीका भी करता है नित उपकार।
मध्यम वह, जो उपकारीका ही केवल करता उपकार।
अधम वही, जो पर-हित-रहित सदा करता अपना उपकार।
नीच मनुज, जो निज-हित-कारण करता अन्योंका अपकार।
परम नीच, कर अहित स्वयंका करता अन्योंका अपकार॥ २॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ऋण-परिशोध

यह बात है पुराने भावनगर राज्यके समयकी । सथरा-में उन दिनों बहेचरदास मोटभाई नामक एक कपोल सज्जन रहते थे । उनके वंशज सब इस समय बम्बईमें हैं । वे आस-पासके गाँवोंमें देन-लेनका काम करते—रुपये कर्ज देते । पर यह कर्ज खून चूसनेके लिये नहीं दिया जाता । केवल दिये हुए रुपये वापस मिल जायँ तो बहुत ।

ऐसा ही कर्ज समीपके एक गाँवमें दिया हुआ था । कर्ज लेनेवालेकी स्थिति कमजोर होती गयी । कर्ज देनेवाले महाजनका कुटुम्ब बम्बई चला गया । एक बार सब लोग सथरा आये, तब मोटभाईको उधारीकी रकम याद आयी और वे उस गाँववाले पटेलके पास रुपये वसूल करनेके लिये पहुँचे । घरमें किसीसे कहा नहीं । घरके सब लोग इधर-उधर ढूँढ़ने लगे । पता लगनेपर दो भाई पटेलके घर जाकर दादा (बड़े भाई) को लौटा लाये और उन्हें नहानेके लिये बाहर बाड़ीमें ले गये । पीछेसे दूसरे भाइयोंने अल्मारी, पेटी, पिटारा सब खोलकर जितने भी कर्जके बही-कागज थे सबको जला दिया । दादाको भी खेद हुआ कि वे सथरा पहुँचते ही रुपये वसूलीके लिये क्यों गये ।

बरसों बीत गये । दादा स्वर्गवासी हो गये । बम्बईसे एक बार घरवाले सब गोपनाथकी यात्राके लिये तलाजा आये । उस समय तलाजा तक ही ट्रेन थी । तलाजासे बैल-गाड़ीसे गोपनाथके लिये चले । रास्ता भूल गये । एक बूढ़े पटेल मिले । कुटुम्बके मुखियाने पूछा—'ओ भाई ! गोपनाथ-का रास्ता कौन-सा है ?'

पटेलने पूछा—कहाँसे आ रहे हैं ?

'बम्बईसे'

'बम्बईमें ही रहते हैं ?'

'हाँ, आजकल तो बम्बईमें ही हैं । हमारा मूल निवास-स्थान तो सथरा है ।'

'आप सथराके हैं ? कपोल बनिये हैं ?'

'हाँ, हैं तो कपोल ही । आप सथरामें किसीको पहचानते हैं ? मेरा नाम कल्याण है । मैं बहेचरदास मोटभाईका लड़का हूँ । गाड़ियोंमें मेरी माँ, मेरी पत्नी और सब बच्चे हैं ।'

वृद्ध पटेलके मुखपर हास्यकी अच्छी-सी लालिमा छा गयी । वे बोले—'हाँ पहचानता हूँ, आप मेरे पीछे-पीछे चले आइये । गोपनाथका रास्ता बताऊँ ।'

वृद्ध पटेल आगे—गाड़ियाँ पीछे । गाड़ी जब गाँवमें प्रवेश करने लगी तब कल्याणभाईने कहा—'गाड़ी गाँवमें कैसे जा रही है ? रास्ता इधरसे ही जाता है ?'

वृद्धने हँसते-हँसते 'हाँ' कहा । कल्याणभाई चुपचाप पीछे-पीछे चले । गाड़ीने एक बड़े अहातेमें प्रवेश किया, तब कल्याणभाई उतरकर सामने खड़े हो गये और बोले—'हमें गोपनाथ पहुँचना है । रास्तेमें रुकनेके लिये समय नहीं है ।' पटेल बोले—'सूरज अस्त हो गया । अब यहाँसे जानेमें न मेरी शोभा है, न आपकी । अब तो सबेरे ही जाना होगा ।'

गाड़ीवानोंको पटेलने बैल खोलनेके लिये कहा और लड़कोंको बुलाकर पासकी ही गोशालामें उन्हें बँधवाकर चारे-दानेकी व्यवस्था करवा दी । दूसरे दिन प्रातःकाल गोपनाथ जानेकी तैयारी करने लगे । इसी बीचमें पटेलने आकर कहा—'कल्याणभाई, आपके दादाने हमको बहुत-सा धन दिया था । आज मुझे उसमेंसे बने जितना,—फूल तो नहीं, पर फूलकी पंखुड़ी—वापस लौटाना है । दया करके हमें इस ऋणसे मुक्त करो ।'

कल्याणभाईको तो गत कलसे ही आश्चर्यकी परम्परा दीखने लगी थी । अब तो उसकी सीमा ही हो गयी । उन्होंने कहा—'मेरे पास कोई बहीखाता नहीं है और न हमारा किसीमें रुपया लेना है । फिर मैं, अकेला तो ले सकता ही नहीं । आपने जो स्वागत-सत्कार किया, इसमें सभी सब कुछ आ गया !'

उन्होंने अपनी माँको बुलाया और उनसे सब बातें कहीं । पटेलकी भी बातें सुनीं । पटेलने पगड़ी उतारकर माताकी पगलगी की और कहा—'अब इस ऋणसे मुझे मुक्त करो । मैं कई दिनोंसे बाट देख रहा था । मेरे कुटुम्बका भला चाहती हो तो माजी ! हमलोग जैसा जो कुछ करें, वैसा करने दो । हमें रोको मत ।'

पटेलकी अन्तर्वेदनाको आँखोंसे पढ़कर कुछ विचार करनेके बाद माँने कहा—'अच्छी बात है, तुम राजी रहो ।'

पटेलके पास जितना था, सब नगद रुपया दे दिया। फिर गहने निकाले, तब माँने इन्कार कर दिया। तब पटेलने अनाज, गाड़ी, बैल इत्यादि सब दे दिये। माँ तथा सारा कुटुम्ब बड़े संकोचमें था, परंतु पटेलका उछलता आनन्द दुःखमें परिणत न हो जाय, इसलिये पटेलको इच्छानुसार करने दिया। (अखण्ड आनन्द)

—मनुभाई जानी

(२)

गौ-माताका स्नेह

[स्नेहभरी मूकभाषा न समझनेका दुष्परिणाम]

मुझे आज भी वह दिन अच्छी तरह याद है जब कि 'लक्ष्मी' लाल तिलक लगाये एवं लाल रस्सीमें बँधी हुई एक चौधरी परिवारसे मेरे घरमें आयी। वह भैया-दूजका दिन था। मेरे परिवार तथा पास-पड़ोसकी बहुत-सी महिलाएँ आँगनमें पूजा करनेमें व्यस्त थीं कि एकाएक अभिमानसे मस्तक उठाये ऊँची जातिकी दूधके समान सफेद गाय, जिसके अङ्गपर एक भी धब्बा न था, आँगनके ही एक कोनेमें लाकर बाँध दी गयी।

इस घटनाको दस वर्षसे ऊपर बीत गये और इस बीच लक्ष्मी हम सभीके दुःख-सुखकी साथी रही। उसे कई बछड़े पैदा हुए। किंतु बछड़े होनेके कारण, केवल लक्ष्मी ही हमलोगोंके सङ्ग रही और उसके सभी बच्चे इधर-उधर चले गये।

ग्यारह अगस्तको घरकी दाई उसके कमरेमें थोड़ा-सा गोबर लेने गयी। उस समय नौकर झाड़ू लगाकर भूसा देने ही जा रहा था। दाईका वहाँपर जाना देखकर लक्ष्मीको बेहद गुस्सा आ गया और उसी झटकेमें एकाएक नौकरको ही उछालकर फेंक दिया, जिससे उसे काफी चोट आयी, सिर फट गया, खूनका फव्वारा फूट पड़ा। दाईके चीख-पुकार मचानेपर घरके ही व्यक्तियोंने उसे उठाकर बाहर किया तथा तुरंत ही पासके दवाखानेमें ले जाकर उसके पट्टी बँधवा दी गयी।

लक्ष्मी सदासे अभिमानी रही। इस नौकरके अतिरिक्त दो-चार लोगोंको छोड़कर वह किसीको भी अपने पास फटकने नहीं देती थी। इस दुर्घटनाके कारण उसकी भी हिम्मत छूट गयी तथा उसने लक्ष्मीको भूसा-पानी देनेसे इन्कार कर दिया। विवश होकर हम सभी लोगोंने इस गायको निकाल देनेका निर्णय कर लिया। फलस्वरूप १३वीं अगस्तको उसे पास ही रहनेवाले तथा सदैव ही उसकी सेवा करनेवाले अहीरको दे दिया।

गायको निकालते समय यह किसीको भी ध्यान नहीं आया कि इस मूक पशुमें भी हमलोगोंके प्रति कोई ममता होगी। तीसरे दिन छूटते ही वह बेतहाशा दौड़ती-दौड़ती आकर मेरे घरकी गलीमें खड़ी हो गयी तथा पूरे चार घंटे अपनी मूक भाषामें दरवाजेपर पूर्ण सत्याग्रह किया। हम-लोगोंसे जो कुछ हो सका उसे दरवाजेपर ही दे दिया; पर लक्ष्मीका सत्याग्रह न टूटनेवाला था और न अपने-आप टूटा। बेचारी डंडेकी मारसे ले जायी गयी।

इसके बाद तो यह सत्याग्रह उसका नित्य-प्रतिकी दिन-चर्या हो गया। प्रतिदिन रास्ता छेककर खड़ी हो जाना उसका नियम-सा बन गया। उपर्युक्त अहीरके बहुतेरे प्रयत्न करनेके बाद भी लक्ष्मी इस घरके अन्न-जल एवं पालन-पोषणको न भूल सकी। गत रविवारको तो उसने गजब ही कर दिया। घरके दूसरे दरवाजेको खुला देखकर सुबह आठ बजे ही दौड़कर अंदर आ गयी तथा अपने परिचित स्थानपर खड़ी हो गयी। अपनी मौन भाषामें अपने हृदयके विचारोंको प्रकट करनेका लाख प्रयत्न किया; पर फिर भी हम उसका स्नेह समझ ही नहीं पाये और थोड़ी देर बाद उसे बाहर निकाल दिया गया। पूरे दिन वह घरके बाहर ही रही और प्रत्येक दरवाजेपर घूम-घूमकर उसने अपनी माँग प्रकट करनेकी चेष्टा की। रात्रि आठ बजे भी वह मेरे चबूतरेके सामने खड़ी रही तथा अपने अन्न-जलकी माँगको दुहराती रही। आखिरी बार मेरे बाबूजीने भी उसे सम्बोधन करके कहा 'अब जाओ माता'। बिना कुछ कहे मुँह मोड़कर लक्ष्मी चली गयी और सदाके लिये चली गयी। वह सचमुच ही बाबूजीके लिये माँके समान थी; क्योंकि इस गायकी आँखोंमें वे अपनी मृत माताजीकी छवि देखते रहे। यदि दुर्घटना न होती तो सम्भव था, उसे बाहर निकालनेकी नौबत भी न आती।

मेरे घरके निकट इन दिनों बिजलीघरवालोंकी विशेष कृपा है। अभी दो गड्ढे लगभग १२ फीट गहरे बिना किसी रुकावटके पड़े हैं। घरके ठीक सामनेवाले गड्ढेमें प्रत्येक ओरसे निराश होकर लक्ष्मीने कूदकर आत्म-हत्याकी

ठान ली। रविवारकी रात्रिमें दो बजे एक शोर-सा मच गया—'अरे, गड्ढेमें गाय गिर गयी।' हठात् मेरी नींद सबसे पहले टूट गयी और आत्मासे आवाज निकली—हो-न-हो यह मेरी ही गाय होगी। परिवारके और लोगोंको इसकी सूचनाके बाद मैं दौड़ती-दौड़ती बाहर पहुँची। देखकर कलेजा धक्-से रह गया। यह तो मेरी ही गाय थी। बड़े प्रयत्नके बाद पंद्रह-बीस व्यक्तियोंकी सहायतासे उसे किसी प्रकार बड़ी ही शारीरिक यातना देकर बाहर निकाला गया। निकलते ही वह अधमरी-सी गिर पड़ी। पर दो मिनट बाद ही उठकर बिना पीछे मुड़कर देखे, दौड़ती हुई भाग खड़ी हुई। उसे भागती देखकर मैंने कई बार आवाज लगायी कि कोई तो उसे पकड़ ले। पर अफसोस, मेरी बात अनसुनी कर दी गयी। सभी एक ओरसे कहने लगे, गायको काफी चोट आयी है। थोड़ा घूम-फिरकर स्वच्छ हवामें कुछ ठीक हो जायगी। किंतु इस संसारके कलुषित वातावरणसे लक्ष्मीको सदाके लिये घृणा हो गयी थी। अपनी मूक भाषामें सैकड़ों प्रयत्न करके भी वह अपना अधिकार न बता सकी। विवश होकर इस संसारको छोड़ देनेका उसने दूसरा कदम उठाया। थोड़ी देर बाद रात्रिमें ही जब किसीको पता न चल सका, निकटके ही एक कूएँमें गिरकर लक्ष्मीने अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

गत सोमवार तथा मंगलवारको हमलोगोंने अनेकों प्रयत्न किये कि लक्ष्मीकी एक झलक भर दिख जाय, पर हाय! वह तो सदाके लिये हमलोगोंसे मुँह मोड़कर चल दी थी, दिखती भी तो कहाँ। आज तीसरे दिन उसकी मृत-काया पानीके ऊपर दिखायी दी। सूचना मिलनेपर जाकर देखा तो सिर पीट लिया। इस पशुकी माया-ममता एवं गर्वके आगे अपनी पराजय मान ली!

सच है, अब हम इन्सानोंको समझमें आ रहा है कि ये अनबोल जानवर भी हमसे कितना अधिक स्नेह कर सकते हैं। ये कह नहीं सकते; क्योंकि इनके पास वाणी नहीं है। किंतु मरकर अपना अधिकार जता सकते हैं। लक्ष्मी जबसे मेरे घरमें आयी, सदासे ही गर्वीली रही। सड़ी-गली वस्तुओं और इधर-उधरकी चीजोंसे उसे सख्त नफरत थी। पिछले दस वर्ष, वह जिस अभिमानसे रही, उसीको ढोते-ढोते वह मर भी गयी। दस दिनोंमें ही उसका गर्व चूर-चूर हो उठा, पर गर्वीलीने अपना हठ नहीं छोड़ा। वाह रे पशु! हमारी अपेक्षा तो तुम ही अधिक हठधर्मी निकले। अपने जन्मसिद्ध अधिकारकी माँग करते-करते अपने प्राणोंपर ही खेल गये तथा हम मनुष्योंको एक उपदेश दे गये।

उस सकरे कूएँसे, लक्ष्मीकी दो दिन पहलेकी लाश बाहर निकालनेकी विकट समस्या उपस्थित हुई। सफाई चौकी, डोमोंकी बस्ती, वाराणसी महापालिकाका स्वास्थ्य-विभाग और अन्तमें फायर ब्रिगेड आदि अनेक स्थानोंपर घूम-घूमकर भीख माँगी, किंतु प्रत्येक स्थानसे निराशा ही हाथ लगी। प्रश्न था उस दुर्गन्धयुक्त लाशको बाहर कैसे निकाला जाय। लाचार होकर बड़ा प्रयत्न करनेके बाद शिवधर नामक एक रिक्शावाला गौमाताकी सेवा करनेको तैयार हुआ तथा अपने थोड़ेसे परिचित लोगोंको बुला लाया। बड़े कष्टके साथ बहुत दर्शकगणोंकी सहायतासे लक्ष्मीकी बीभत्स लाश बाहर निकाली गयी। हृदय देखकर बाहर खड़ी जनता भी हाय-हाय कर उठी।

लक्ष्मीका मृत-शव कफनसे ढका, फूलोंसे सजा, धूपबत्ती-के सुगन्धमें गङ्गाप्रवाहको ले जाया गया। देखकर इस घरके प्रत्येक प्राणीकी आँखोंसे आँसुओंकी निरन्तर धारा-सी फूट पड़ी। केवल मात्र दस दिन हमलोगोंकी सेवासे वञ्चित होकर इस गायको इतनी मार्मिक पीड़ा हुई कि अपनी जानपर खेल गयी या अपने ममत्वकी एक अमिट छाप हम समीपर सदा-सदाके लिये छोड़ गयी। एक ऐसी पीड़ा दे गयी जो कभी भी धुल नहीं पायेगी। लक्ष्मीके दूधसे बना हुआ रक्त-कण अभी भी हमलोगोंकी नसोंमें प्रवाहित हो रहा है। उसकी इस छोटी-सी भूलको भी हम क्षमा न कर सके और हमने स्वार्थी बनकर उसको निकाल दिया। इन अल्प दिनोंकी सेवा न मिलनेसे उसे असीम निराशा हुई तथा अन्ततः अपने प्राण देकर ही उसने अपना कर्तव्य पूरा किया। निराशा होना स्वाभाविक भी था। पिछले दस दिनोंमें उसे जितना शारीरिक कष्ट मिला, उसके लिये उसकी आत्मा तैयार न थी। उसने अपनी स्थिति समझानेका प्रयत्न भी बहुत किया, पर जब सफलता न मिली तो अपना सब कुछ खोकर और अपना अन्त करके ही उसे शान्ति मिली। ईश्वरसे हमलोगोंकी करबद्ध प्रार्थना है कि लक्ष्मीकी मृतात्माको सदैवके लिये पूर्ण शान्ति मिले तथा हमें अपनी इस छोटी-सी भूलके लिये क्षमा प्रदान करें।

इस गो-हत्याका श्रेय किसे दूँ; अपनेको या बिजलीघरके कर्मचारियोंको, जिनकी लापरवाहीसे खुला हुआ गड्ढा, लक्ष्मीके

लिये प्राणघातक बना। यह एक गायकी स्वामि-भक्तिकी तथा स्नेहकी सच्ची घटना है, जो मेरे परिवारमें सदैवके लिये एक कहानी बनकर रहेगी। अन्तमें मैं बिजलीघरके प्रबन्धकर्ताओं-से यह प्रार्थना करूँगी कि खुला गड्ढा छोड़नेकी ऐसी गलती न करें। क्या वे मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करेंगे ?

उन सभी भाई-बहनोंको मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने इस मृत-गायके शव-प्रवाहमें सहयोग प्रदान किया।

—कु० सावित्री जायसवाल एम्० एस-सी०, लेक्चरर, महिला-कालेज हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी)

(३)

स्वार्थ-त्याग

मैं और मेरे साहेब बैठे बातें कर रहे थे कि इसी बीच एक बीस-बाईस वर्षका नवयुवक बड़ी कृतज्ञताके साथ नमस्कार करता हुआ समीप आया। वह साहेबके चरणोंपर गिरा, फिर उठकर दोनों हाथ जोड़ते हुए हर्षपूर्ण गद्गद स्वरमें बोला—

'साहेब ! आज मुझको स्थायी होनेका आदेश प्राप्त हो गया।'

'अच्छा !' अचानक उठकर साहेबने हर्षसे पुलकित हो उस युवकको अपने पास खींच लिया और उसकी पीठ थप-थपाकर कहा—'सरस—बहुत सुन्दर ! तू परिश्रमी, चिन्तनशील और पुरुषार्थी नवयुवक है।' 'परंतु साहेब, आपने जो मुझपर दया न की होती तो कदाचित्…' '(बात काटकर) अरे पागल ! सच्ची दया तो ऊपरवालेकी है !' यों कहते हुए साहेबने कुछ सदुपदेश देकर नवयुवकको विदा किया।

मैं अपलक नेत्रोंसे यह सब देख रहा था।

'एकाध वर्ष पहलेकी बात है।' मेरी ओर मुँह फिराते ही, मेरे मनमें आया कि इस विषयमें कुछ पूछूँ; इसके पहले ही—साहेबने अपने मनसे ही कहना शुरू किया। 'मैं उस समय अपने सतीशको कहीं अच्छी जगह लगानेकी कोशिशमें था। फैक्टरी, कपड़ेकी मिल, बैंक, अदालत—सभी ओर मेरी दृष्टि रहती और समय मिलनेपर मैं उन-उनके अधिकारियोंके कानोंमें बात डाल देता। उस समय मेरी पेन्शनके दो-एक वर्ष ही बाकी थे। इसलिये मैंने मनमें सोचा था कि मेरे इस पदपर रहते-रहते ही कहीं अच्छी जगह सतीशको लगा दिया जाय और वह दो-एक वर्षमें स्थिर हो जाय, इसके बाद मैं पेन्शन लूँ तो घरका व्यवहार सरलताके साथ चलता रहे।

कुछ देर रुककर, बगलकी टेबलसे उड़ते हुए कागजों-पर किताब रखकर साहेबने आगे कहना शुरू किया—

'इसका परिणाम अच्छा निकला। केमिकल्स फैक्टरीके मैनेजर साहेबने पहली तारीखसे सतीशको एक क्लर्कके कामपर नियुक्त करनेकी बात कही। इसके पश्चात् लगभग तीन दिनके बाद, मैं संध्याके समय घरमें बैठा था कि एक बुढ़िया माँजी आयीं।

'भई, बेटा ! मैं तुम्हारे पड़ोसमें ही रहती हूँ।'

'हाँ, मैं पहचानता हूँ, माँजी ! बोलो क्या काम है ?'

'तुम-जैसे साहेबको एक अर्ज करने आयी हूँ।'

'बोलो—माँजी ! खुशीसे कहो।'

'बेटा ! मेरा मनु इस साल मैट्रिकमें पास हुआ है। अबतक तो मैंने घरके बासन-बरतन बेचकर या दूसरोंका काम करके घरका काम चलाया और इसको पढ़ाया; पर अब यह सब मुझसे नहीं हो पाता। अगर तुम इसको कहीं छोटी-मोटी जगह रखवा दो तो इस आखिरी उम्रमें मैं सुखकी साँस लूँ।'

'मैं, मेरी ताकतभर पूरी चेष्टा करूँगा'।' वह आश्वासन देकर मैंने बुढ़िया माँजीको विदा किया।

अब साहेब जरा रुके, उनकी क्षणभरकी चुप्पी भी मुझे बुरी लगी।

'फिर क्या हुआ ?' मैं उत्कण्ठाके साथ पूछ बैठा।

'बस, पहली तारीखको मैंने सतीशके बदले माँजीके मनुको केमिकल्स फैक्टरीमें रखवा दिया। हमारी आवश्यकताकी अपेक्षा इस गरीब कुटुम्बकी आवश्यकताका महत्त्व विशेष था। अभी जो नवयुवक आया, वही उस बुढ़िया माँजीका मनु था। अस्थायी नौकरीसे आज वह स्थायी हो गया।'

साहेबने बात पूरी की। संतोषकी परितृप्तिके तेजसे चमचमाते हुए साहेबके विशाल कपालकी ओर देखता हुआ मैं विचार करने लगा।

'यदि प्रत्येक मनुष्य इसी प्रकार अपनी आवश्यकताके साथ-साथ दूसरेकी आवश्यकताका महत्त्व भी समझने लगे तो कितने ही बिना-सुलझे सवाल अपने आप ही हल हो जायँ।

—मोहनलाल चावड़ा

(४)

अपकारीके प्रति उपकार

अगस्तका महीना था। कालेजमें पढ़ाई सुचारुरूपसे नहीं हो रही थी। होस्टलके कुछ विद्यार्थियोंने चुरूके दर्शनीय स्थानोंको देखनेकी सोची। शहरसे दो मील दूर एक स्थान है। वहाँ बहुत ही सुन्दर मूर्तियाँ हैं। लड़के एक मील चले होंगे कि उन्हें दो लड़कियाँ जाती हुई दिखायी दीं। लड़कोंने उनसे पानी माँगा। पानी पिला दिया। लेकिन फिर लड़के छेड़-छाड़ करने लगे और वे उन्हें झिड़कती हुई आगे चली गयीं। इतनेमें वह स्थान आ गया, लड़के वहाँ चले गये।

थोड़ी देर बाद वहाँ एक जीप आकर रुकी, उसमें पुलिस कर्मचारी और डी० एस० पी० बैठे थे। उन्होंने आते ही उन पाँचों लड़कोंकी तलाशी ली। तलाशीमें उन्होंने दो चाकू, एक हंटर तथा एक रूमाल बरामद किया जिसमें नाक बहनेसे खून लगा हुआ था। पुलिसको शक हो गया। पासके गाँवमें एक पंचकी हत्या कर दी गयी थी और पुलिस हत्यारोंका पता लगा रही थी। लड़कोंकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। लड़कोंने कहा कि 'हम तो शहरसे आ रहे हैं।' पुलिसने प्रमाण माँगा तो लड़कोंने और कोई चारा न देखा और बताया कि उधर दो बहनें गयी हैं, हम उनके साथ आये हैं। पुलिसका आदमी उनसे पूछने गया। लड़के बयान सुनकर दंग रह गये— उन लड़कियोंने कहा कि 'वे पाँचों हमारे साथ आये हैं और हमारे भाई हैं।' लड़कोंको पुलिसने वहीं छोड़ दिया। लड़के उन लड़कियोंके पास गये, उन्होंने माफी माँगी तथा पता पूछा, लेकिन केवल एक ही जवाब मिला कि 'आप किसी और बहनसे ऐसा व्यवहार नहीं करना। हमने तो हमारा जो कर्तव्य था, वह निभा दिया है!'

—विद्याधर महर्षि

(५)

प्रभु आर्त्त और अर्थार्थी भक्तोंकी प्रार्थना सुनकर तुरंत ही उनकी रक्षा करते हैं

बात १९२४ ई० की है, जब कि मैं सेंट जोन्स कालेज आगरामें लैक्चरार था। इसी योग्यताके मेरे तीन मित्र* कानपुर और मेरठ कालेजोंमें लैक्चरार थे। हम चारोंको कलकत्ता युनिवर्सिटीकी बी-काम० परीक्षा प्राइवेट देनेकी आज्ञा मिल गयी। चार मास पश्चात् परीक्षा होगी। सब अपनी-अपनी तैयारी करने लगे। मेरे पड़ोसमें एक अध्यापिका रहती थीं। मेरे पुत्र और छोटी बहिनको भी पढ़ाती थीं। घरमें आना-जाना हो गया। मेरी पत्नीकी सहेली बन गयीं। घनिष्ठता बहुत बढ़ गयी। कालेजके कामके पश्चात् कुल समय अध्यापिकाके साथ गप-शप, सैर-सपाटे, खेल-तमाशेमें लग जाता था। मेरी पढ़ाई कतई नहीं होती थी। तीन महीनेकी गर्मियोंकी छुट्टियाँ होनेवाली थीं। विचार था कि छुट्टियोंमें पढ़ लूँगा। मैं दुखी था कि यदि ऐसी ही दशा रही तो छुट्टियोंमें भी पढ़ाई नहीं हो सकेगी और परीक्षामें पास नहीं हो सकूँगा। एक दिन प्रातः अपने कमरेमें ही व्याकुलताके कारण मैं घुटनोंके बल बैठकर, हाथ जोड़कर, आँखोंमें आँसूभरे, काँपते हुए टूटी-फूटी भाषामें प्रभुसे प्रार्थना करने लगा कि—'हे दयालु परमात्मा, आप सबके हृदयकी बात जानते हैं—आप चाहें तो मुझ दीन, दुखी और मतिहीनपर कृपा करके मेरी रक्षा करें—अध्यापिकाजीसे हमारा सम्बन्ध खतम करा दें, जिससे मैं अपना समय पढ़नेमें लगा सकूँ—मुझमें इतनी न बुद्धि है और न शक्ति कि इनसे अपनेको अलग कर सकूँ।' इसी समय अध्यापिका और मेरी पत्नी वहाँ आ गयीं और मेरी दशा देखकर पूछने लगीं कि 'यह क्या हो रहा है।' मैंने साफ-साफ कह दिया कि 'अध्यापिकाजी मेरे सामने कभी न आवें इसके लिये प्रभुसे भीख माँग रहा हूँ।' वह यह कहकर कि 'भविष्यमें मेरा समय खराब नहीं करेंगी और खूब पढ़ो और परीक्षा पास करो'—वहाँसे चली गयीं। अपने घर जाकर उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा—पर उसी समय उनका पति आ गया और जबरदस्ती उनसे पत्र छीनकर पढ़ने लगा। अध्यापिकाका हमारे यहाँ आना-जाना पतिने सदाके लिये बंद कर दिया। अध्यापिका उसी दिन मौका पाकर मुझको अन्तिम नमस्कार करने आयीं और कह गयीं कि

* तीनों मित्रोंके नाम—

१. प्रो० के० एल० गोविल, एम० ए०, बी-काम०, रिटायर्ड रजिस्ट्रार इलाहाबाद विश्वविद्यालय, २१ मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद।

२. प्रो० गंगाशरण गौतम, एम० ए०, बी-काम०, रिटायर्ड। गौतम ब्रादर्स, पब्लिशर्स, मेस्टन रोड, कानपुर।

३. प्रो० बनवारीलाल, एम० ए०, बी-काम०, रिटायर्ड। मेरठ कालेज, मेरठ (हापुड़में हैं)

किस प्रकार उसका पत्र पकड़ा गया और आपकी प्रार्थना प्रभुने पाँच मिनटके अंदर-अंदर ही सुनकर किस प्रकार सदाके लिये विछोहकी व्यवस्था कर दी । प्रभु आपको भविष्यमें सुखी रक्खें'—यह कहकर चली गयीं । मैं और मेरी पत्नी बहुत दुखी हुए, पर अब कोई चारा नहीं था । उसके पश्चात् अबतक अध्यापिकाके दर्शन नहीं हुए । इस घटनासे मेरा अटल विश्वास हो गया कि एक आर्त्त और अर्थार्थीकी हृदयसे निकली हुई प्रार्थना प्रभु तुरंत सुनकर उसकी रक्षा करते हैं ।

मैं फिर कानपुर चला गया और गङ्गाजीके किनारे एक बँगलेमें ठहरकर पढ़ाई करनेमें जुट गया । मेरे तीनों मित्र भी वहीं आ गये और सब मिलकर परीक्षाकी तैयारी करने लगे । पर यहाँ भी एक ऐसी ही प्रार्थना तुरंत सुननेकी घटना घटी । उसको भी यहाँ लिखना उचित समझता हूँ ।

(२) बहुत परिश्रम करनेपर भी हम चारों मित्र पूरी तैयारी न कर पाये और आठ दिन परीक्षाके रह गये । मेरे तीनों मित्रोंने इस वर्ष परीक्षा न देनेका इरादा कर लिया; क्योंकि पूरी तैयारी न होनेके कारण पास होना कठिन था । जब वे घर जाने लगे तो ताँगेमें बैठकर उन्हें स्टेशन छोड़ने मैं भी उनके साथ गया । अकेला रहना पड़ेगा—अकेले ही कलकत्ता जाना पड़ेगा—मैं दुखी था और रास्तेमें ही ताँगेपर मैं रो पड़ा और वहीं प्रभुसे प्रार्थना करने लगा कि 'क्या ही अच्छा हो यदि परीक्षा एक मासके लिये स्थगित हो जाय । तब तो मैं अवश्य पास हो जाऊँगा ।' दूसरे दिन ही कलकत्ता विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रारका तार मिला कि 'परीक्षा पूरे एक मासके लिये स्थगित हो गयी है ।' मेरी आँखोंमें हर्षके आँसू भर आये और मैं प्रभुको लाख-लाख धन्यवाद देता रहा । मित्रोंको भी सूचित किया पर उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे जहाँ अगले वर्ष बी-काम० पहिली बार खुली थी, परीक्षा देनेका निश्चय किया । मैं कलकत्ता अकेला गया और सेकंड क्लासमें परीक्षा पास की ।

जब इन दोनों घटनाओंका विचार आता है तो सोचता हूँ कि मुझ-जैसे बुद्धिहीन व्यक्तिकी भी जब प्रभु तुरंत ही पुकार सुन लेते हैं तो जो परमात्माके अनन्य भक्त हैं और जिनका जीवन 'मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च—' के सच्चे ढाँचेमें ढला हुआ है और जिनके हृदयमें अज्ञानका अन्धकार निकलकर ज्ञानका प्रकाश हो चुका है उन्हें प्रभु कभी भी अपनी कृपासे वञ्चित नहीं रखते । भगवान्ने ठीक ही कहा है—

> अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
> तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

इन घटनाओंके पश्चात् मेरा कुल जीवन ही बदल गया और भविष्य भी उज्ज्वल ही होता गया । पाठक, इन व्यक्तिगत प्रार्थना-सम्बन्धी घटनाओंसे कुछ शिक्षा लेकर प्रभुके चरणोंमें हृदयसे अपनेको समर्पित कर देंगे तो उनका जीवन भी सुख-शान्ति-आनन्दमय अवश्य हो जायगा—यह निश्चय और अटल बात है ।

—एम्० एल्० शाण्डिल्य एम्० ए०, बी० काम०, एल-एल्० बी० (प्रोफेसर)

(६)

अन्तःकरणकी आवाज

दादा साहेब मावलंकरके जीवनका यह प्रसंग है ।

दादा साहेब मावलंकरने सन् १९१३ में वकालत शुरू की थी । उस समय उनके एक मित्र एल्-एल्० बी० की पढ़ाई करते थे । उन दिनों सरकारी कानूनोंके सम्बन्धका एक मासिकपत्र निकलता था । उसका वार्षिक मूल्य था—साढ़े बाईस रुपये; परंतु सरकारने ऐसा नियम बना रक्खा था कि कानूनकी पढ़ाई करनेवाले विद्यार्थीको वार्षिक मूल्यके केवल दस रुपये ही देने पड़ेंगे ।

इस बातका उल्लेख करके उन मित्रने मावलंकरजीको पत्र लिखकर यह बताया कि 'आप मुझे दस रुपये भेज दें । मैं लॉ-कालेजका छात्र हूँ अतः मासिकपत्र मेरे नामसे मँगवाकर मैं आपको भेज दूँगा ।'

श्रीमावलंकरजीने मित्रका पत्र पढ़ा, उनको इस मासिक-पत्रकी आवश्यकता तो थी ही । अतएव वे तुरंत ही मित्रको दस रुपये भेजनेको तैयार हो गये । परंतु पत्र लिखने बैठते उनके मनमें विचार आया—

'ऐसा करना क्या ठीक होगा ? मैं इस समय कानूनका छात्र नहीं रहा । अतः मुझको दस रुपयेमें यह नहीं मिलना चाहिये । इतना होनेपर भी मेरे मनमें जो इस प्रकार मासिक-

पत्र मँगवानेका लोभ पैदा हुआ है, वह केवल साढ़े बारह रुपये बचानेके लिये ही तो है। यह मेरा कितना अधःपतन है। आज साढ़े बारह रुपये ही बचानेके लिये जब मैं ऐसी जालसाजी करनेको तैयार हो गया, तो कल कोई मुझे साढ़े बारह सौ या साढ़े बारह हजार देने लगेगा तब तो मैं पता नहीं क्या-से-क्या करनेको तैयार हो जाऊँगा।'

इस विचारने दादा साहेबको जाग्रत् कर दिया। उनको लगा कि ऐसा करना असत्य है, बेईमानी है, ठगी है। अतएव उन्होंने तुरंत ही अपने मित्रको पत्र लिखा—

'हम पढ़े-लिखे लोग ही यदि सरकारको इस प्रकार ठगने लगेंगे तो यह हमारे लिये कितनी अशोभन बात होगी। इस मासिकपत्रको मैं पूरा मूल्य भरकर मेरे नामपर ही मँगवा लूँगा। तुम भी ऐसा काम कभी मत करना।'

—मुकुलभाई

(७)

'न मे भक्तः प्रणश्यति'

मेरे पिता शिवके अनन्य भक्त थे। सन् १९४२ में वे कुछ अस्वस्थ रहने लगे। एक दिन बाजारसे आये तो आते ही कहा कि 'मैं पुष्प लाया हूँ, पर पुष्पके पैसे मैंने मालीको नहीं दिये हैं। अतः अभी जाकर दे आओ।' मैं कुछ प्रत्युत्तर दूँ कि उसके पूर्व ही उन्होंने कहा कि 'देखो जीवनमें यदि सुखी रहना चाहते हो तो कभी भी किसीसे उधार मत लेना।' उन्होंने मुझे पैसे दिये एवं मैं तुरंत ही जाकर मालीको दे आया। उसके कुछ ही दिनों बाद उनका स्वर्गवास हो गया, पर उनके अन्तिम वाक्य मुझे मार्गदर्शन देते रहे एवं मैंने जीवनमें उधार न लेनेकी प्रतिज्ञा की। समय व्यतीत होता गया।

सन् १९५८ में राज्यसरकारद्वारा मुझे इलाहाबाद प्रशिक्षण हेतु भेजा गया। मैं आवश्यकतानुसार रुपये लेकर घरसे गया था, परंतु फीस आदिके रुपये जमा करानेमें काफी रुपये खर्च हो गये। मैं 'येन केन प्रकारेण' अपनी आवश्यकताओंको सीमित रखकर वेतन आनेकी राह देखता हुआ समय बिताने लगा। उस समय मेरा पोस्टिंग उदयपुर डिविजनके आमेर तहसीलमें था। यद्यपि राज्य-सरकारद्वारा यह स्पष्ट आदेश दे दिया जा चुका था कि प्रशिक्षणार्थियोंके वेतन आदि भेजनेमें किसी प्रकारकी असावधानी न बरती जाय, पर राज्यके कार्योंमें ढील हो ही जाती है। इस कारण समय निकलता गया, परंतु वेतन नहीं प्राप्त हुआ। प्रशिक्षण-केन्द्रके उपसंचालक महोदयद्वारा समय-समयपर मेरे प्रार्थनापत्रपर उपयुक्त रिमार्क देकर स्मृतिपत्रादि भेजे गये, पर फल आशाके विपरीत ही हुआ।

मैं जनवरीमें इलाहाबाद पहुँचा था। समय बीतता गया एवं फरवरी भी बीतनेको आ गयी, पर वेतन प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन मेरे एक सहपाठीके १००) सौ रुपयेका मनीआर्डर आया जो कि राजस्थानके रहनेवाले थे। मेरे पास एक भी पैसा नहीं था। इसपर भी मुझे मेस-चार्ज—(भोजन-चार्ज) के रुपये भी शीघ्र जमा कराने थे। अतः मैंने उपर्युक्त साथीसे ५०) पचास रुपये उधारकी माँग की एवं उन्होंने सप्रेम मुझे ५०) रुपये दे दिये। यह पहला अवसर था, जब कि मैंने पिताजीके वचनोंको तोड़ते हुए उधार लिया था।

इस घटनाके कुछ दिनों बाद हमलोग फूलपुर भेज दिये गये। वहाँ हमें सात दिन रहना था। फूलपुर जाते ही मैंने अपना बिस्तरा खोल एकान्तमें डेरा डाला। सभी व्यक्ति भोजनके लिये उतावले हो रहे थे। मैंने एक नियम बना रक्खा था कि एक चूल्हेका भोजन करना एवं एक ही कुएँका पानी पीना, इस कारण भोजनकी मुझे चिन्ता नहीं थी। मैं आराम करने लगा। उसी समय एक सज्जन, जो सहकारिताका प्रशिक्षण ले रहे थे, मेरे पास आये एवं बातचीत करने लगे। उनसे मेलजोल हो गया। उन्होंने मेरे नित्यकर्म आदिकी सुव्यवस्था कर दी एवं मेरा समय वहाँ आनन्दपूर्वक व्यतीत होता गया। एक दिन हम गोमती रानीके बनाये हुए तालाब एवं मन्दिर आदिको देखने गये, वहाँ मेरे उन सहपाठीसे बात-ही-बातमें विवाद हो गया। उनका कहना था कि 'मनुष्य ही सब कुछ करता है, भगवान् तो केवल पण्डितोंका ढकोसला है।' उन्होंने भावावेशमें कह दिया कि 'यदि मैं तुम्हें रुपये नहीं देता तो तुम भूखों मरते।' बात बढ़ती गयी एवं उन्होंने कह दिया कि 'यदि मेरे पचास रुपये दिये बिना होलीकी छुट्टीमें घर गये तो तुम्हें तुम्हारे इष्टदेवकी सौगन्ध है।' इस बातको सुनकर मुझे हार्दिक दुःख हुआ, पर क्या करता, रुपये मैं उधार ले चुका था एवं वे खर्च भी हो चुके थे। केवल कुछ ही पैसे पासमें थे। हमें उसी दिन वहाँसे लौटकर इलाहाबाद पहुँचना था। फूलपुरसे मैं चला तो बहुत उदास था। दुःखमें भगवान् ही सहायता करते हैं। अतः मैं चुपचाप—

तुलसी सीताराम कहु दृढ़ राखहु बिसवास।
कबहूँ बिगरत ना सुने रामचन्द्र के दास॥

—दोहेका जाप करता इलाहाबाद आया। साथी लोग सिनेमा देखने तथा घूमनेके लिये शहरमें ही रुक गये। मुझे नैनी जाना था। पासमें इतने पैसे भी नहीं थे कि ताँगा किराये करता। रात्रिको पुल पारकर जानेमें बन्दरों आदिका भय रहता है, परंतु मैं तो उपर्युक्त दोहेका जप करता-करता प्रशिक्षण-केन्द्र पहुँच गया।

मेरे मस्तिष्कमें चिन्ता व्याप्त थी। इस कारण उस रात्रिको मुझे नींद नहीं आयी। अर्धरात्रिके समय सहपाठी-लोग आये तो मैं बिस्तरपर पड़ा करवटें बदल रहा था। उन्होंने एक साथ मिलकर मुझे कहा कि 'गुरुजी! आप चिन्ता न करो, हम सब एक-एक रुपया इकट्ठा कर आपका कर्ज चुका देंगे।' परंतु मैंने उनसे निवेदन किया कि 'मैं उधार लेनेकी एक बार गल्ती कर गया हूँ, अब दूसरी बार नहीं करूँगा।' सारी रात करवटें बदलते बीती। प्रातःकाल नित्यकर्म करके मैं लौटा तो दो सहपाठी आये और उन्होंने बीस रुपये देकर कहा कि 'आप हमारे लिये जोधपुरकी चार जोड़ी जूतियाँ लेते आइयेगा।' मैं उनके आशयको समझ गया। वे चाहते थे कि जयपुरतकके किरायेका प्रबन्ध कर दिया जाय, आगे वे स्वयं कर लेंगे। मैं भी अपने विचारपर दृढ़ था। अतः मैंने उन रुपयोंसे जायफल आदि खरीद लिये ताकि साथ-के-साथ जयपुर भेज दूँगा।

प्रातःकालसे ही लोग घर जानेके मूडमें थे। अतः दस बजे ही छुट्टी कर दी गयी। मैं चुपचाप आकर बिस्तरेपर सो गया। मानसिक जाप राम-नामका चलता रहा। ठीक ग्यारह बजे सहपाठियोंने नीचेसे आवाजें देनी आरम्भ कीं—'गुरुजी! आपका मनीआर्डर आया है—आपका मनीआर्डर आया है।' मैंने सोचा प्रशिक्षण-केन्द्रोंपर प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी छात्र बन जाता है, इसलिये ये लोग मुफ्तकी हँसी उड़ाते रहे हैं। पर जब डाकियेने पुकारा तब मैं नीचे गया। मेरे नामका मनीआर्डर था जो गंगानगरसे भेजा गया था एवं उसके साथ-ही-साथ वेतनका ड्राफ्ट भी था। मेरी आँखोंसे आँसू बहने लगे एवं सहसा मेरे मुँहसे निकल पड़ा—'न मे भक्तः प्रणश्यति।' मैंने पचास रुपये तुरंत उस मित्रको देकर जयपुर जानेके लिये आवश्यक तैयारी आरम्भ की। सभी उपस्थित छात्रोंके मुँहसे यही ध्वनि निकल रही थी कि भगवान् भक्तको दुखी नहीं देख सकते।

—शिवचन्द्र बहुरा एम्० ए०, बी० एड, साहित्यरत्न

(८)

भगवान्के नामके स्मरणका माहात्म्य

जिसने किसीको धोखा नहीं दिया, उसे धोखा क्यों होगा?

घटना दि० १४ सितम्बर ६५ की है। मैं बड़ागाँव जानेके लिये दतिया समथर जाने-आनेवाली बसपर चिरगाँवसे सवार हुआ। साथमें एक बैग था, जिसमें तीन हजारसे अधिक रुपये अमानत (एक सज्जनने दूसरे सज्जनको देनेके लिये दिये थे) थे। बस रुकी, मैं शीघ्रतासे उतरा किंतु बैग बिलकुल पीछेकी सीटपर भूलसे छोड़ दिया, एक मिनट बाद मोटर चल दी। बाद बैगकी याद आयी! मैं एकदम घबरा गया, कारण कि बैग खो जानेपर अपयश मिलेगा तथा रकम घरसे देनी पड़ेगी। ऐसी महँगाईमें इतने रुपये भरना घरका उजाड़ होना था; क्योंकि मैं एक गाँवका साधारण व्यवसायी दूकानदार हूँ। मैं एकदम घबरा गया। भगवान् महावीरको यादकर णमोकार मन्त्रका उच्चारण करता रहा; किंतु हृदयमें विश्वास था कि जब मैंने किसीकी रकमका हरण नहीं किया तो मेरी रकम खो नहीं सकती; फलस्वरूप मैंने दूसरी मोटर, जो झाँसी जा रही थी, उसे बिलकुल सामने खड़े होकर रोका। बस रुक गयी। उसे पूरा वृत्तान्त सुनानेपर उसके ड्राइवरने कुछ देरके पश्चात् मुझे झाँसी पहुँचा दिया। वह बस मुझे झाँसीमें मिल गयी। उसके ईमानदार ड्राइवर तथा कंडक्टर-क्लीनरने मुझे घबराया देखकर उक्त बैग दे दिया। भगवान्ने और मेरी आत्माके जोरने क्लीनरको उक्त बैग उठाकर ड्राइवरको सौंपनेमें मदद की। मेरे दिमागमें यही प्रश्न अब रह-रहकर उठता है कि यदि क्लीनरकी दृष्टि [बै]गपर न जाती तथा और कोई उसे चपेट जाता तो—

—ज्ञानचन्द्र जैन, बबैरा

श्रीहरिः

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र]

वर्ष ३९

संवत् २०२१-२०२२ वि०

सन् १९६५ ई०

की

निबन्ध, कविता

तथा

चित्र-सूची

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार] * [प्रकाशक—मोतीलाल जालान

कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

वार्षिक मूल्य रु० ७.५० (सात रुपये, पचास पैसे) } आजीवन ग्राहक शुल्क १००)
विदेशोंके लिये १०.०० [१५ शिलिंग] } प्रति संख्या .४५ (पैंतालीस पैसे)

निबन्ध-सूची

पद्य

संकलित पद्य

कहानी

चित्र-सूची

बहुरंगे

रेखाचित्र

श्रीगीता-जयन्ती-महोत्सव

भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें अर्जुनसे कहा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (१८ । ४६)

'जिस परमात्मासे समस्त चराचर प्राणि-जगत्की उत्पत्ति हुई है तथा जो परमात्मा सारे जगत्में व्याप्त है, उस परमात्माकी अपने कर्मके द्वारा पूजा करके मनुष्य सिद्धिको—जीवनकी सफलताको प्राप्त करता है।'

आजका मानव इस भगवत्पूजाको भूलकर भोग-पूजामें प्रवृत्त है, इसीसे वह निरन्तर भोगचिन्तनमें लगा हुआ क्रमशः भोगासक्ति, काम, क्रोध (लोभ), मोह, स्मृतिनाश, बुद्धिनाशको प्राप्त होता हुआ अपना सर्वनाश कर रहा है। भौतिक विज्ञानकी इतनी उन्नति होनेपर भी मनुष्य आज भयभीत, संत्रस्त और दुखी है। मानवको इस दयनीय दशासे यदि मुक्ति मिल सकती है, यदि वह समस्त जगत्के हितके कार्यमें लगकर अपना हितसाधन कर सकता है तो इसका परम साधन है—भगवान्के श्रीमुखसे निकली हुई भगवद्गीता-सुधाका यथार्थरूपमें प्रचार-प्रसार। यह गीता अर्जुनको भगवान्ने जिस दिन सुनायी थी, उसी दिनको 'गीता-जयन्ती'के नामसे मनाया जा रहा है।

इस वर्ष श्रीगीता-जयन्तीका वह महापर्व मार्गशीर्ष शुक्ल ११ शनिवार, तारीख ४ दिसम्बर सन् १९६५ को है। इस पर्वपर जनतामें गीताप्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद और उनसे दिव्य शक्ति प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य करने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थका पूजन।

(२) गीताके महान् वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासका पूजन।

(३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण।

(४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके लिये, गीता-प्रचारके लिये समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्यपरायण बनानेकी महान् शिक्षाके परम पुण्यदिवसका स्मृति-महोत्सव मनानेके लिये सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन, भगवन्नाम-संकीर्तन आदि।

(५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीतापाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण।

(६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीताकथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन।

(७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा।

(८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदय, गीतासम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करें।

विश्व-हिंदू-परिषद्

हिंदू-धर्म ही सनातन धर्म है और प्राचीन कालमें इस धर्मको माननेवाले लोगोंका यह भारतवर्ष देश बहुत विस्तृत था। कालक्रमसे संकोच होते-होते इसका वर्तमान छोटा-सा रूप रह गया। पर अब भी भारतवर्षको अपने धर्म, संस्कृति तथा दर्शनका मूल स्रोत समझनेवाले तथा भारतको ही अपनी पितृभूमि, मातृभूमि माननेवाले लोग सारे विश्वमें फैले हुए हैं और जो भारतको अपनी पितृभूमि मानते हैं, वे सभी हिंदू हैं—भले वे जीवनके एक ही चरम लक्ष्यकी ओर ले जानेवाले किसी भी पथके पथिक हों—किसी भी मतके अनुयायी हों। बौद्ध, जैन, सिख आदि सभी एक ही महान् विशाल हिंदू-वटवृक्षकी विभिन्न शाखाएँ हैं।

वर्तमान समयमें भारतवर्ष और भारतके बाहर विभिन्न देशोंमें निवास करनेवाले सभी हिंदुओंके एक शक्तिशाली संघटनकी आवश्यकता है, जिससे सभी हिंदू एक अभिन्न धर्म, राष्ट्र तथा संस्कृतिके प्रति निष्ठावान् हों और एक महान् व्यापक समाजके नाते अपने संरक्षण, संवर्धन और उत्थानका प्रयास करें।

इसी महान् उद्देश्यको लेकर एक 'विश्व-हिंदू-परिषद्' की स्थापना हुई है। विश्वव्यापी हिंदुओंकी रक्षा, प्रगति तथा उसकी महत्ताके प्रकाश और सुसंघटनके लिये इस परिषद्का पहला कार्यक्रम है—आगामी माघ (जनवरी) में कुम्भके समय प्रयागमें समस्त संसारके हिंदुओंका एक बृहत् सम्मेलन करना। इस सम्मेलनमें संसारके सभी देशोंमें रहनेवाले हिंदुओंके प्रतिनिधि पधारें, एक दूसरेका परिचय प्राप्त करें, परस्पर ऐक्य, प्रेम तथा सहयोग बढ़ावें और एक स्थायी सुदृढ़ क्रियाशील विश्व-हिंदू-परिषद्की स्थापना हो तथा उसकी शाखाएँ सर्वथा स्थापित होकर महत्त्वपूर्ण कार्य करें। इसके लिये परिषद्की ओरसे यथासाध्य प्रयत्न हो रहा है। यह नम्र निवेदन है कि इसमें भारतके तथा बाहरके हिंदूमात्र सहयोग प्रदान करें। परिषद्के प्रधान कार्यालयका वर्तमान पता है—विश्व-हिंदू-परिषद्, चन्द्रमहल, ठाकुरद्वार रोड, बम्बई २—इसी पतेपर पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

सन् १९६६ की गीता-दैनन्दिनीका तीसरा संस्करण

(दैनन्दिनीके विक्रेताओंको मूल्यमें विशेष रियायत मिलती है)

आकार २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ ४१६, दाम ६२ पैसे, सजिल्द ७५ पैसे, डाकखर्च अलग।

यह दैनन्दिनी डायरीके साथ ही पूरे वर्षमें सम्पूर्ण गीताका पाठ और मनन करनेकी एक दैनिक चर्या है। इसमें हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी और भारतीय शक-संवत्के दिनाङ्क तथा तिथि, वार, घड़ी, नक्षत्रका संक्षिप्त पत्रक और खास-खास व्रत, त्यौहार, ग्रहण दिये गये हैं। इसमें सदाकी भाँति बहुत-से आध्यात्मिक विषयोंके अतिरिक्त रेल, तार, डाक, इनकम-टैक्स, मृत्यु-कर आदिके साधारण नियम तथा घरेलू दवाएँ और स्वास्थ्य-रक्षाके सूत्र भी हैं।

गीता- दैनन्दिनीके विक्रेताओंको अजिल्द-सजिल्द एक साथ १००, २५०, ५०० और १००० प्रतियाँ लेनेपर ३.५० सैकड़ेसे १२.५० तककी क्रमशः विशेष रियायत तथा नियमानुसार १५) सैकड़ा कमीशन और पैकिंग रेल-भाड़ा आदि मिलता है। वर्षके अन्तमें कुल बिक्रीपर मिलनेवाला विशेष कमीशन भी मिलता है। एक हजार प्रतियाँ एक साथ लेनेपर नाम-पता भी छाप दिया जाता है।

गत वर्षोंमें कई बार ग्राम-पंचायतों, व्यापारी-प्रतिष्ठानों, मिलों, कारखानों आदिने पाँच-पाँच हजार प्रतियाँ वितरणके लिये माँगीं, परंतु आर्डर देरसे आनेके कारण उनकी माँगें पूरी न हो सकीं और कइयोंको निराश होना पड़ा। इसलिये निवेदन है कि जिन्हें लेनी हों, वे शीघ्र आर्डर भेजनेकी कृपा करें।

गीताप्रेसकी इस दैनन्दिनीकी अबतक बीस लाख तिहत्तर हजार प्रतियोंका छप जाना इसकी लोकप्रियता और उपयोगिताका एक उत्कृष्ट प्रमाण है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

सम्मान्य ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा प्रार्थना

१–इस अङ्कसे भगवत्कृपासे 'कल्याण'का ३९वाँ वर्ष पूरा हो गया है। अब चालीसवें वर्षका प्रथम अङ्क श्री'धर्माङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। इसमें धर्मके विविध विषयोंपर बड़े ही विचारपूर्ण तथा प्रेरणाप्रद लेख रहेंगे। अहिंसा, सत्य, क्षमा, दया, परोपकार, ब्रह्मचर्य आदिपर सैकड़ों सुन्दर-सुन्दर आख्यान सचित्र रहेंगे। और भी रंगीन तथा सादे चित्र होंगे। यह अङ्क बहुत ही उपादेय तथा शिक्षाप्रद होगा, ऐसी आशा है।

२–इस वर्ष सभी खर्च बहुत बढ़ गये हैं, तो भी 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य ७.५० ही रखा गया है। आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजकर तुरंत ग्राहक बन जाइये। इस अङ्ककी माँग विशेष होनेकी सम्भावना है। रुपये भेजते समय पुराने ग्राहक मनीआर्डर-कूपनमें अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। नाम, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' अवश्य लिखें।

३–'ग्राहक-संख्या' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्क नये नंबरोंसे और पुराने नंबरोंसे वी० पी० द्वारा दुबारा जा सकता है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा ग्राहिका देवियोंसे निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें।

४–जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ ही 'कल्याण'कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

५–किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो विशेषाङ्क और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका मूल्य ही रु० ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) है।

६–गीताप्रेसका पुस्तक-विभाग तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी-) का विभाग 'कल्याण'-विभागसे पृथक् है। इसलिये 'कल्याण'के मूल्यके साथ पुस्तकोंके लिये तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के लिये रुपये न भेजें; किंतु चेक या ड्राफ्ट सभी गीताप्रेसके नामसे भेजना चाहिये। गोरखपुरके बाहरके चेकोंमें १रु० बैंक-चार्ज जोड़कर भेजना चाहिये। पुस्तकोंके आर्डर 'व्यवस्थापक—गीताप्रेस'के नामसे तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के रुपये 'व्यवस्थापक—कल्याण-कल्पतरु'के नामसे भेजें।

७–इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें बड़ी कठिनता है और बहुत देरसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) है।

८–आजीवन ग्राहक-शुल्क १००रु० है। सजिल्दका १२५रु०, विदेशका अजिल्दका १२५रु० या दस पौंड और सजिल्दका १५०रु० या बारह पौंड। चेक या ड्राफ्ट 'मैनेजर, गीताप्रेस'के नामसे भेजना चाहिये।

९–'धर्माङ्क'के लिये लेख बहुत अधिक आ जानेके कारण बहुतसे लेख नहीं छप सके हैं। लेखक महोदय कृपापूर्वक क्षमा करेंगे।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०